भारतीय राज्य शासन

(मध्यप्रान्त के हाई स्कूलों की दसवीं और ग्यारहवीं श्रेणियों के लिए स्वीकृत)

लेखक

भारतीय शासन, भारतीय जागृति, नागरिक शिक्षा और नागरिक शास्त्र, आदि पुस्तकों के रचयिता

भगवानदास केला

—:*:—

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

प्रथम बार] १९३६ [मूल्य ॥।)

निवेदन

अपने राज्य का सुयोग्य नागरिक बनने का प्रयत्न करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक बालक बालिका को इसके लिये समुचित शिक्षा मिले। माध्य-मिक स्कूलों में पढ़ने वाले सब विद्यार्थियों को यह जानना चाहिये कि हमारे देश में कैसी शासन पद्धति प्रचलित है, किन किन परिवर्तनों के बाद, किस प्रकार यह अपने वर्तमान स्वरूप में आई है, राज्य के भिन्न भिन्न कार्य क्या हैं, और हम उनमें क्या भाग ले सकते हैं। हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में, मध्यप्रान्त में इस विषय की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। वहाँ हाई स्कूल की दसवीं और ग्यारहवीं श्रेणी में भूगोल लेने वाले विद्यार्थियों को प्रारम्भिक इतिहास (Elementary History) का विषय लेना होता है, जिसके अन्तर्गत उपर्युक्त विषयों का समावेश है। उसी को लक्ष्य में रख कर यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण रखना आवश्यक था, अतः इस पुस्तक के प्रथम दो परिच्छेद तो ऐतिहासिक हैं ही, आगे के परिच्छेदों में भी उसका यथा-सम्भव ध्यान रखा गया है। इस बात का प्रयत्न किया गया है कि पाठ्य क्रम सम्बन्धी कोई भी बात छूटने न पावे, और साथ ही किसी अनावश्यक बात से पुस्तक का आकार न बढ़े।

इस सम्बन्ध में एक अपवाद उल्लेखनीय है। पाठ्य क्रम में सन् १६१६ ई० तक की घटनाओं तथा उक्त वर्ष के क़ानून के अनुसार स्थापित शासन पद्धति का उल्लेख है। यदि उसका अक्षरशः पालन किया जाता तो पुस्तक अधूरी रहती। इसलिए

सन् १९३५ ई० तक की घटनाओं, तथा उक्त वर्ष के विधान के अनुसार स्थापित शासन पद्धति का भी संक्षेप में समावेश कर दिया गया है; और, अन्य पाठ्य विषय से उसकी भिन्नता सूचित करने के लिए वह अंश छोटे टाइप में छपाया गया है। जो विद्यार्थी चाहें, वे उसे छोड़ भी सकते हैं। मैं तो समझता हूँ कि शिक्षाधिकारी निकट भविष्य में पाठ्य क्रम में उचित संशोधन करेंगे, और उक्त विषय का भी उसमें समावेश करने की कृपा करेंगे।

ऐसी पुस्तक का आकार बहुत कुछ नपा-तुला होने से, लेखक को उसमें किसी विषय की विशद चर्चा या आलोचना आदि करने का अवसर नहीं मिलता। मैं नागरिकता और शासन आदि विषयों पर सन् १९१५ ई० से लिख रहा हूँ, और इस समय मेरी भारतीय शासन, भारतीय जागृति, नागरिक शिक्षा, और नागरिक शास्त्र आदि कई पुस्तकें हिन्दी जनता के सामने हैं। उनमें से कुछ में मैंने इस पुस्तक में वर्णित विषयों पर अपने विचार सविस्तर प्रकट किए हैं। जिन विद्यार्थियों की, इस विषयों की रुचि परीक्षा पास करने तक ही परिमित न हो—और आशा है, ऐसे विद्यार्थी काफी संख्या में होंगे—वे सुविधानुसार उन पुस्तकों का अवलोकन कर सकते हैं।

यदि कोई अध्यापक महाशय इस पुस्तक के किसी अंश के सम्बन्ध में कुछ सुधार की बात सुनावेंगे, तो मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँगा, और अगले संस्करण के समय उस पर सहर्ष विचार करूँगा।

भारतीय ग्रन्थमाला
वृन्दावन

विनीत
भगवान दास केला

विषय-सूची

भारतीय राज्य शासन

पहला परिच्छेद

कम्पनी का शासन

—:*:—

प्राक्कथन—इस समय अंगरेजों का भारतवर्ष में राज्य है, आरम्भ में वे यहाँ व्यापार करने के लिये आये थे, पीछे समय ने उन्हें यहाँ का शासक बना दिया। उन्होंने पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी में विविध बढ़िया और बहुमूल्य वस्तुओं की उत्पत्ति के लिये भारतवर्ष की ख्याति सुनी थी। उन्हें क्रमशः यह ज्ञात हुआ कि भारतवर्ष से व्यापार करके पुर्तगीज (पुर्तगाल वाले) और डच (हालैंड निवासी) खूब लाभ उठा रहे हैं। वे भी इस देश से व्यापार करने के अवसर की खोज में लगे।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भी उनकी नाविक शक्ति सामान्य थी। उनका अधिकार अपने देश इंगलैंड (ग्रेट ब्रिटेन) तक ही परिमित था, जो एक साधारण सा टापू है। किन्तु वे अपना बल क्रमशः बढ़ा रहे थे। सन् १५८८ ई० में

इंगलैंड ने अपने प्रबल शत्रु स्पेन पर विजय पायी, तब से उसका सिक्का सारे योरप पर जम गया। पूर्वी देशों का जो व्यापार सोलहवीं शताब्दी के अस्सी वर्ष पुर्तगाल वालों के हाथ में रह कर स्पेन के आधिपत्य में गया था, उससे अब अंगरेजों के लाभ उठाने का समय आ गया।

अंगरेजों के व्यापार का प्रारम्भ—सन् १६०० ई० में अपनी प्रसिद्ध रानी ऐलिजेबथ से सनद (चार्टर) लेकर लगभग दो सौ अंगरेज व्यापारियों ने एक कम्पनी बनायी, जिसका नाम 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' था। यह कम्पनी भारत-वर्ष के किनारों पर व्यापार करने लगी। भिन्न भिन्न बन्दर-गाहों पर अपनी कोठियाँ बनाने के लिये इसने तत्कालीन शासकों से जैसे बना अनुमति प्राप्त करने की चेष्टा की। सन् १६०८ ई० में कप्तान हाकिन्स सूरत में उतरा। उसने सम्राट् जहाँगीर से आगरे में भेंट करके सूरत में कोठी बनाने की आज्ञा प्राप्त की, परन्तु पुर्तगाल वालों के षड्यंत्र के कारण विशेष कार्य न हुआ। पश्चात् १६१५ ई० में इंगलैंड नरेश जेम्स प्रथम का दूत सर टामस रो जहाँगीर के दरबार में उपस्थित हुआ। अंगरेजों की व्यापारिक सफलता इसी समय से प्रारम्भ होती है। सन् १६३३ ई० में मछलीपट्टन में एक कोठी बनायी गयी। सन १६४० ई० में चन्द्रगिरी के राजा से खरीद कर मदरास की स्थापना की गयी और वहाँ सेंट जार्ज नामक किला बनाया गया। सन् १६५१ में हुगली (बंगाल) में एक कोठी बनायी गयी। सन् १६६१ ई० में बम्बई की बस्ती, इंगलैंड नरेश चार्ल्स को, उसका विवाह पुर्तगाल की राजकुमारी से होने के कारण, दहेज़ में मिली, और चार्ल्स ने नाम मात्र की मालगुज़ारी

लेकर सन् १६६८ ई० में यह बस्ती कम्पनी को दे दी। सन् १६९० ई० में सम्राट् औरंगजेब से कलकत्ते में कोठी खोलने की अनुमति प्राप्त की गयी। इस प्रकार कम्पनी ने विविध बन्दरगाहों में अपने अड्डे जमाये। यह कम्पनी के विशाल कारोबार का, और पीछे उसके अकल्पित राज्य का सूत्रपात था।

कम्पनी समय समय पर इङ्गलैंड के तत्कालीन शासकों से अपनी सनद बदलवाती रही। सन् १६९१ ई० में भारतवर्ष से व्यापार करने के लिये एक दूसरी अंगरेज़ी कम्पनी और बन गयी। कई वर्ष तक इन दोनों का खूब परस्पर विरोध रहा। अन्ततः सन् १७०२ ई० में ये 'सम्मिलित ईस्ट इंडिया कंपनी' नाम से मिल गयीं। पहले कम्पनी इंगलैंड के शासक से सनद बदलवाती थी, क्रमशः वहाँ पार्लिमेंट की शक्ति बढ़ती गयी और अब वही सनद देने लगी। (पार्लिमैन्ट के सम्बन्ध में अगले परिच्छेद में लिखा जायगा)।

कम्पनी का प्रबन्ध एक 'कोर्ट-आफ़-डायरेक्टर्स' नामक संचालक समिति करती थी। इसमें चौबीस डायरेक्टर तथा एक गवर्नर होता था।

अन्य योरपियन व्यापारियों से प्रतिद्वन्दिता—अंगरेजों ने यहाँ समुद्र के खुले मार्ग से प्रवेश किया, इसलिये उन्हें आरम्भ में किसी भारतीय शासक (और सेना) से सामना न करना पड़ा। इनसे उनका नम्रता और शिष्टाचार का ही व्यवहार रहा। उन्होंने जैसे भी बना, इनको प्रसन्न और संतुष्ट रखने का प्रयत्न किया।

पहले कहा जा चुका है कि अंगरेजों के यहाँ आने से पूर्व

ही पुर्तगाल तथा हालैंड वाले यहाँ आकर व्यापार करने लग गये थे। उन्होंने जब देखा कि अंगरेज भी व्यापार क्षेत्र में आरहे हैं, तो उनकी ईर्षा होनी स्वाभाविक थी। परन्तु अंगरेज बराबर डटे रहे। सतरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पुर्तगाल वालों की समुद्री शक्ति क्रमशः क्षीण हो गयी और वे अंगरेज़ों के प्रतिद्वन्दी न रहे। अस्तु, अंगरेज अपनी व्यापारिक उन्नति के प्रयत्न में लगे रहे। क्रमशः उनके पाँव यहाँ जमने लगे। हालैंड वालों से उनका विरोध चला जा रहा था, अन्ततः चिनसुरा की लड़ाई में उन्हें हरा कर सन् १७५९ ई० में क्लाइव ने उनकी बस्तियों पर अधिकार जमा लिया। उनकी शक्ति का ह्रास हो गया। इसके बाद उनकी और अंगरेजों की प्रतिद्वन्दिता न रही।

डच लोगों के परास्त होते होते फ्रांस भी मैदान में आ उतरा, और समुद्री हुकूमत के लिये इंगलैंड से मुकाबला करने लग गया। अंगरेज और फ्रांसीसी दोनों भारतवर्ष की आन्तरिक अशान्ति तथा शासकों की निर्बलता से लाभ उठाने की सोचते थे। दोनों यहाँ पर व्यापारिक और राजनैतिक प्रभुता प्राप्त करना चाहते थे। यही कारण दोनों के पारस्परिक विरोध का था। भारतवर्ष के जिन दो नरेशों का आपस में झगड़ा होता, प्रायः उनमें से एक का पक्ष अंगरेज लेते और दूसरे का फ्रांसीसी। जो नरेश विजयी होता उसके सहायक उससे काफी पुरस्कार एवं अधिकार आदि पाते। इस प्रकार अंगरेजों और फ्रांसीसियों दोनों की ही शक्ति क्रमशः बढ़ती गयी। अधिकतर, फ्रांसीसी लाभ उठाते रहे, पहले उनकी ही विजय के लक्षण रहे। परन्तु, अन्ततः सफलता अंगरेजों को मिली। सन् १७६० ई०

में वांदीवाश की लड़ाई में हार जाने पर फ्रांसीसी फिर सिर न उठा सके। इस प्रकार अंगरेजों के तीनों प्रतिद्वन्द्वियों—डच, पुर्तगीज और फ्रांसीसियों की शक्ति का अन्त हो गया, और अब योरपियन शक्तियों में एक मात्र अंगरेजों का ही यहाँ प्रभुत्व रह गया।

कम्पनी का राज्य-स्थापना—अंगरेजों और फ्रांसीसियों की प्रतिद्वन्द्विता का उल्लेख ऊपर किया गया है। उन दोनों जातियों को यहाँ के स्थानीय शासकों की निर्बलता का अनुभव हो गया था। अतः वे अपनी शक्ति बढ़ाने की फिकर में रहते थे। अस्तु, अंगरेजों ने कलकत्ते के किले में सैनिक तैयारी की। इस पर बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को अंगरेजों पर सन्देह हुआ, और उसने उनका विरोध किया। फल-स्वरूप नवाब और अंगरेजों में लड़ाई ठन गयी। नवाब के लोभी सेनापति मीरजाफर आदि कुछ आदमियों ने ऐन समय पर उसे धोखा दिया, तथा अंगरेज सेनापति क्लाइव और वाटसन ने बड़ी युक्ति और चालाकी से काम लिया। अस्तु, सैनिक बल बहुत कम होने पर भी अपनी संगठन शक्ति और कूट नीति से अंगरेज सन् १७५७ ई० में, पलासी की लड़ाई में विजयी रहे।

इस लड़ाई में मीरजाफर अंगरेजों से मिल गया था, विजय-प्राप्ति के बाद अंगरेजों ने उसे बंगाल का नवाब बना दिया। इस कृपा के उपलक्ष्य में मीरजाफर ने उन्हें कलकत्ते के पास की कुछ भूमि पर (जिसे अब चौबीस परगना कहते हैं) ज़मीदारी का अधिकार, तथा कुछ व्यापारिक विशेषाधिकार प्रदान किये। वास्तव में अँगरेजों की शक्ति अब उससे कहीं अधिक थी, जितनी उपर्युक्त पंक्तियों से साधारणतया विदित होती है, कारण

कि अब बंगाल जैसे धनवान और स्मृद्धिवान भू-भाग का नवाब 'उनका आदमी' था, उसे अंगरेजों ने नवाब बनाया था। वह अपने पद की रक्षा के लिये अंगरेजों का आश्रित था। वह नाम मात्र का नवाब था, वास्तविक शक्ति अंगरेजों के हाथ में थी। अब अँगरेजों के लिये डच और फ्रांसीसियों पर विजय प्राप्त करना सुगम होगया था—इस विषय में अंगरेजों को जो सफलता अगले दो तीन वर्ष बाद ही मिली, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

इस विजय ने अंगरेजों के लिये भारतवर्ष में राज्य स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। उन्हें अब उत्तर भारत में एक स्थान के बाद दूसरे स्थान पर अधिकार प्राप्त करने के लिये यथेष्ट धन जन मिल गया। भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य की स्थापना का रहस्य यही है कि अंगरेजों ने यहाँ के आदमियों तथा यहाँ के ही द्रव्य के सहारे, इस देश के एक भाग के बाद दूसरे भाग को प्राप्त किया है।

मीरजाफर की अंगरेजों (कम्पनी) से कुछ ही समय तक निभ सकी। मीरजाफर अंगरेजों के नियंत्रण से ऊब गया, उसने स्वतंत्र होकर रहना चाहा—परन्तु वह शक्ति-शून्य था, अँगरेजों के मुकाबले उसकी क्या स्थिति थी! अंगरेजों ने उसे सिंहासन से उतार दिया और उसकी जगह उसका सम्बन्धी मीर-कासिम नवाब बना दिया। इससे कम्पनी को बहुत सी भेंट तथा वर्दवान, मिदनापुर और चटगाँव के जिलों की प्राप्ति हुई।

मीरकासिम से भी कम्पनी की बहुत समय तक नहीं बनी। बात यह थी कि कम्पनी के कर्मचारी बहुत लोभी और स्वार्थी थे। वे कम्पनी को दिये हुए व्यापारिक विशेषाधिकारों का

दुरुपयोग करते और उनसे अनुचित लाभ उठाते थे। नवाब ने इसे रोकना चाहा, पर वह सफल नहीं हुआ। इस पर उसने सब आयात-निर्यात कर उठाकर, सब व्यापारियों को समान रूप से निश्शुल्क माल लाने ले जाने की इजाजत दे दी। इससे कम्पनी को पूर्व-प्राप्त व्यापारिक विशेषाधिकारों से कोई लाभ न रहा, और उसके कर्मचारियों का भी अनुचित लाभ उठाना बन्द हो गया। उन्हें यह बहुत अखरा। कुछ अन्य बातों से भी नवाब और कम्पनी का संघर्ष बढ़ता रहा। अन्ततः विवश होकर नवाब को युद्ध छेड़ना पड़ा। उसने बादशाह शाहआलम द्वितीय, और अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला की सहायता ली। सन् १७६४ ई० में, बक्सर का युद्ध हुआ। उसमें अंगरेजों (कम्पनी) की विजय रही। सन् १७६५ ई० में, इलाहाबाद में सन्धि हुई। बादशाह ने कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अर्थात् मालगुजारी प्राप्त करने का अधिकार दिया, तथा कम्पनी की अधिकृत 'उत्तरी सरकार' नामक भूमि पर उसका अधिकार स्वीकार किया। इस प्रकार कम्पनी को अब बंगाल आदि में कानूनी स्वत्व प्राप्त होगया। कम्पनी ने बादशाह को २६ लाख रुपये सालना देना मंजूर किया।

अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला से रुपया लेकर उसका राज्य उसे लौटा दिया गया। अब वह अंगरेजों का सहायक हो गया, और उसे इलाहाबाद और कड़ा जिले बादशाह को देने पड़े।

बंगाल का नवाब पुनः मीरजाफर बना दिया गया था। अब उसके मर जाने पर सन् १७६५ ई० में उसका पुत्र नवाब मान

लिया गया। अब कम्पनी केवल व्यापार करने वाली संस्था न रही, वह एक शासक संस्था होगयी। बंगाल का नवाब नाम मात्र का नवाब था, वास्तविक अधिकार तो कम्पनी को ही था। वह मालगुजारी वसूल करती थी, अपनी सेना रखती थी, और आवश्यकतानुसार अपनी रक्षा करने के अतिरिक्त, अधिक भूमि प्राप्त करने के वास्ते आक्रमण भी कर सकती थी।

द्वैध या दोहरा शासन—अब बंगाल में दो शक्तियों का शासन हो चला। क्लाइव—जो अब बंगाल का गवर्नर था—नवाब को न रखते हुए भी उसके नाम से ही शासन कार्य चलाना चाहता था, जिस से कम्पनी की प्रभुता का लोगों को यथेष्ट परिचय न मिले, और भारतवर्ष में तथा विदेश में उसका विरोध न हो। अस्तु, अब एक ओर तो कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की मालगुजारी वसूल करने तथा उसे विविध-कार्यों में व्यय करने का अधिकार था, सेना पर भी उसका ही नियंत्रण था। दूसरी ओर, शासन प्रबन्ध नवाब के कर्मचारियों के अधीन था, वे शान्ति और सुव्यवस्था तथा न्याय कार्य के लिये उत्तरदायी थे। यह शासन-प्रबन्ध इतिहास में दोहरा या द्वैध शासन कहलाता है। इसमें शासन कार्य दो शक्तियों में बटा होने से यह सफल न हुआ। कम्पनी को अधिक से अधिक धन संग्रह करने की चिन्ता थी; सेना और अर्थ दोनों शक्तियाँ उसके पास थी। नवाब पर शासन कार्य का उत्तरदायित्व अवश्य था, पर वह साधन-हीन था। कम्पनी ने लोभवश जनता के हितों की ओर ध्यान देना न चाहा, नवाब धन-हीन होने के कारण उस ओर ध्यान दे न सका। इसका परिणाम बंगाल के लिये बहुत ही हानिकर हुआ, जनता को

बड़े कष्ट का अनुभव करना पड़ा। गरीब किसानों से मालगुज़ारी बहुत सख्ती से वसूल की गयी। सर्व साधारण को अन्य करों के सम्बन्ध में भी बहुत शिकायतें रही। न्यायालयों में कम्पनी के कर्मचारियों का प्रभाव होने से, इनसाफ भी ठीक तरह नहीं होता था।

सन् १७७२ ई० में वारनहेस्टिंग्ज बंगाल का गवर्नर हुआ। उसने मालगुजारी के सम्बन्ध में ज़मींदारों से पंचवर्षीय बन्दोबस्त किया। मालगुजारी का ठेका दिया जाने लगा, जो कोई अधिक से अधिक मालगुजारी देता, उसे ही ठेका दिया जाता था। मालगुज़ारी वसूल करने के लिये, हिन्दुस्थानी कर्मचारियों को हटा कर, उनका काम योरपियन कलेक्टरों को दे दिया गया। इसी समय से एक एक जिले में एक एक कलेक्टर होने की प्रथा चली। कलेक्टर ही पंडितों और मौलवियों की सहायता से, हिन्दुओं और मुसलमानों के मुकद्दमों का फैसला करता था। कलकत्ते में दो अपील की अदालतें स्थापित की गयीं:—सदर दीवानी अदालत माल के मुकद्दमों की अपील के लिये, और सदर निजामत अदालत फौजदारी मामलों की अपील के लिये।

रेग्युलेटिंग ऐक्ट—उत्तर भारत में, कम्पनी का राज्य स्थापित होने की बात ऊपर कही गई है, दक्षिण में भी उसकी प्रभुता बढ़ती जा रही थी। क्रमशः सन् १७७२ ई० तक बंगाल, बम्बई और मदरास नामक तीन अहातों (प्रान्तों) में उसका अधिकार काफी बढ़ गया था। अब वह व्यापार के साथ शासन भी करती थी। किसी व्यक्ति समूह या संस्था के लिये, विशेषतः विदेश में, दोनों कार्य कुशलता-पूर्वक सम्पादन करना

कठिन होता है। ज्यों ज्यों कम्पनी का व्यापार क्षेत्र बढ़ता गया, उसका शासन-प्रबन्ध शिथिल होता गया। पार्लिमेंट में समय समय पर कम्पनी के अधिकारों के सम्बन्ध में चर्चा होती थी। सन् १७६७ ई० में कम्पनी के कार्यों की जाँच करने के लिये कमेटी भी नियुक्त हुई। पश्चात् कम्पनी के रुपया उधार माँगने पर, पार्लिमेंट को उसके अधिकारों में हस्तक्षेप करने का प्रत्यक्ष अवसर मिला; और ऋण देते समय सन् १७७३ ई० में कम्पनी का प्रबन्ध सुधारने के विचार से, उसने रेग्युलेटिंग 'ऐक्ट' नामक कानून बनाया। कम्पनी के डायरेक्टरों अर्थात् संचालकों और स्वामियों के संगठन में परिवर्तन किया गया। उनकी शक्ति परिमित की गयी। यह नियम किया गया कि कम्पनी के युद्ध मालगुजारी, और न्याय आदि सम्बन्धी सब महत्व-पूर्ण विषयों की सूचना ब्रिटिश सरकार को दी जाया करे।

पहले बंगाल, मद्रास और बम्बई के प्रान्त अपना अपना प्रबन्ध अपनी स्वतंत्र कौंसिलों द्वारा किया करते थे। अब बम्बई और मद्रास की सरकार बंगाल सरकार के अधीन की गयीं, बंगाल का गवर्नर गवर्नर-जनरल कहलाया जाने लगा। (वारन हेस्टिंग्स पहला गवर्नर-जनरल हुआ) उसकी सहायता के लिये चार मेम्बरों की कौंसिल बनायी गयी। गवर्नर-जनरल को अपनी इस कौंसिल के निर्णय के विरुद्ध कुछ करने का अधिकार न था। यदि किसी विषय के पक्ष और विपक्ष में दोनों ओर समान मत हों, तो गवर्नर-जनरल अपना निर्णायक मत ('कास्टिंग वोट') दे सकता था।

रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से कलकत्ते में एक प्रधान जज और तीन अन्य जजों की प्रधान अदालत (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना

की गयी ; इस पर गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के मेम्बरों का कोई अधिकार न था।

इस ऐक्ट से कम्पनी पर ब्रिटिश पार्लिमेंट का नियंत्रण प्रत्यक्ष रूप से होने लगा। अब उसके समस्त राज्य पर गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल का अधिकार स्थापित होगया। इस प्रकार अँगरेजी राज्य के भिन्न भिन्न प्रान्तों के शासन में समानता लाने तथा उसके कर्मचारियों के सुधार का प्रयत्न हुआ। तथापि इसमें कई दोष भी थे। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को मद्रास और बम्बई की सरकारों पर अधिकार किस किस विषय में तथा कहाँ तक हो, इसका यथेष्ट स्पष्टीकरण नहीं किया गया था। कौंसिल के मेम्बरों में गवर्नर-जनरल से सहयोग करने का भाव न था, और विधान के अनुसार, गवर्नर-जनरल अपनी कौंसिल के विरुद्ध कुछ कर नहीं सकता था। प्रधान अदालत भारतवर्ष के रीति रिवाजों से परिचित न थी, वह अंगरेजी कानून से मुकद्दमों का फैसला करती थी, इससे भारतीयों को बड़ी असुविधा होती थी। इस अदालत और कौंसिल के अधिकार स्पष्ट रूप से निर्धारित न थे। बात बात में विरोध होने लगा। भारत सरकार और ब्रिटिश सरकार के अधिकारों की भी स्पष्ट व्याख्या नहीं की गयी थी।

निदान शासन प्रबन्ध में बहुत कठिनाइयाँ उपस्थित हुई और रेग्यूलेटिंग ऐक्ट की त्रुटियाँ क्रमशः अधिकाधिक स्पष्ट होने लगीं।

पिट का कानून—उपर्युक्त दोषों को दूर करने का प्रयत्न यद्यपि सन् १७८४ ई० से पूर्व भी किया गया था, पर वह सफल न रहा। अन्ततः उक्त वर्ष में पिट ने भारतीय शासन सुधार के

लिये एक मसविदा (' बिल ') उपस्थित किया, जो पार्लिमैंट में स्वीकृत हुआ । इस कानून के अनुसार कम्पनी के शासन प्रबन्ध को देख भाल करने के लिये पार्लिमैंट की ओर से ' बोर्ड-आफ-कंट्रोल ' (नियंत्रण समिति) नामक एक कमेटी बनाई गयी, इसमें छः सदस्य रखे गये ।

बम्बई और मद्रास की सरकारें, अब युद्ध संधि तथा राजस्व के विषय में निश्चित रूप से गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के अधीन कर दी गयी । गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों में एक की कमी कर दी गयी, अर्थात् अब से कौंसिल में चार की जगह तीन सदस्य रहने लगे । इस प्रकार केवल एक सदस्य द्वारा समर्थन होने पर भी, गवर्नर-जनरल अपने निर्णायक मत से अपने इच्छानुसार कार्य कर सकता था । पीछे जाकर यह नियम कर दिया गया कि विशेष दशाओं में गवर्नर-जनरल को कौंसिल के मत के विरुद्ध भी निर्णय करने का अधिकार रहे ।

पिट के कानून से कम्पनी स्पष्ट रूप से ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गयी उसके कामों पर ब्रिटिश मंत्री, 'बोर्ड-आफ-कंट्रोल' द्वारा नियंत्रण करने लगे । इस कानून के अनुसार भारतवर्ष पर कम्पनी तथा ब्रिटिश पार्लिमैंट दोनों का अधिकार स्थापित हुआ । पश्चात् क्रमशः कम्पनी के अधिकार कम, और पार्लिमैंट के अधिकार अधिक होते गये ।

सन् १७९३ ई० का सनद-कानून—सन् १७७३ ई० में रेग्यूलेटिंग ऐक्ट पास होते समय कम्पनी को व्यापार करने को सनद बीस वर्ष के लिये स्वीकृत हुई थी । उसके बाद इंगलैंड में सौदागरों तथा व्यापारियों ने यह आन्दोलन किया कि भारतवर्ष में व्यापार करने के लिये कम्पनी को

एकाधिकार न होना चाहिये, वरन् सब लोगों को व्यापार करने की अनुमति रहनी चाहिये। कम्पनी ने स्वभावतः इसका विरोध किया। खूब वाद विवाद रहा। अन्ततः सन् १७९३ ई० में कम्पनी की सनद बदलने के समय, भारत में एक निर्धारित सीमा तक व्यापार करने का अधिकार अन्य अंगरेज व्यापारियों को भी दिया गया। अब से उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये 'सिविल सर्विस' की व्यवस्था की गयी।

सन् १८१३ ई० का कानून—सन् १७९३ ई० के बीस वर्ष बाद फिर कम्पनी की सनद बदलने का अवसर आया। इस बीच में कम्पनी का राज्य बहुत बढ़ गया था, कई देशी राज्य उसके अधीन होगये थे। इंगलैंड में इस बात का बड़ा आन्दोलन होने लगा था कि भारतवर्ष में व्यापार करने का अधिकार अंगरेज मात्र को बिना भेद-भाव होना चाहिये। कम्पनी के संचालकों ने अपने विशेषाधिकारों का समर्थन किया। परन्तु उनकी कुछ न चली। सन् १८१३ ई० में कम्पनी का भारतवर्ष के व्यापार का एकाधिकार उठ गया। सब अंगरेजों को यहाँ व्यापार करने की अनुमति हो गयी। हाँ, कम्पनी को चीन से व्यापार करने का एकाधिकार रहा। भारतवर्ष में शिक्षा प्रचार करने के लिये कम से कम एक लाख रुपया सालाना खर्च की जाने की व्यवस्था की गयी। भारतवर्ष में मुल्की (सिविल) और सैनिक कार्य करने वाले कम्पनी के कर्मचारियों की शिक्षा (ट्रेनिंग) का प्रबंध किये जाने का आदेश हुआ। यह नियम किया गया कि उच्च पदों पर नियुक्तियाँ सम्राट् की अनुमति से हुआ करें।

सन् १८३३ ई० का कानून—सन् १८३३ ई० में फिर

कम्पनी की सनद बदलने का समय आया। इस समय इंगलैंड में अनेक आदमी यह चाहते थे कि भारतवर्ष का राज्य कम्पनी से ब्रिटिश सरकार अपने हाथ में ले ले। कम्पनी के चीन के व्यापारिक एकाधिकार का भी बहुत विरोध था। जन-मत से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने १८३३ में कम्पनी का एकाधिकार हटा कर उक्त व्यापार द्वार अंगरेज मात्र के लिये खोल दिया, तथापि उसने कम्पनी को भारत का शासन करते रहने दिया। भारत सरकार का मुख्याधिकारी अब तक बंगाल का गवर्नर-जनरल कहलाता था, अब वह भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल कहलाने लगा। भारत सरकार को अब कम्पनी के समस्त राज्य के लिये कानून बनाने का अधिकार हो गया, मद्रास और बम्बई की सरकारों को कानून बनाने का अधिकार न रहा। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों में एक की वृद्धि हुई, कानून-सदस्य और होने लगा। पहला कानून-सदस्य मेकाले था, जिसकी अंगरेजी शिक्षा प्रचार सम्बन्धी नीति प्रसिद्ध है। आगरा और अवध का प्रान्त पृथक् किया जाकर लेफ़्टेनेंट गवर्नर के शासन में रखा गया।

कम्पनी की सनद में यह भी लिखा गया कि सरकारी नौकरियाँ मिलने का मार्ग भारतवासियों के लिये खुला रहे, कोई आदमी अपने रंग, जाति या धर्म आदि के कारण उनसे वंचित न किया जाय।

सन १८५३ ई० का कानून—सन् १८३३ ई० के बीस वर्ष बाद फिर कम्पनी की सनद बदली गयी। इस बार सनद की कोई अवधि निर्धारित नहीं की गयी, वरन् यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारतवर्ष में राज्य करने का वास्तविक अधिकार

ब्रिटिश सरकार को है; हाँ, जब तक पार्लिमेंट स्वयं उस का शासन करना न चाहे, तब तक कम्पनी सम्राट् के नाम से राज-काज कर सकती है। इस समय से बंगाल-बिहार-उड़ीसा के शासन के लिए एक पृथक् लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त किये जाने से गवर्नर-जनरल इस कार्य से मुक्त हो गया। अब तक उच्च पदों (सिविल सर्विस) के लिये नामजदगी होती थी, और कम्पनी के संचालक प्रायः अपने परिचित या सम्बन्धित व्यक्तियों को ही नियुक्त करते थे। अब यह नियम किया गया कि सिविल सर्विस के लिये प्रतियोगिता हुआ करे, जो व्यक्ति परीक्षा में ऊँचा स्थान प्राप्त करे, वही उच्च पद पर नियुक्त किया जाय, इसमें जाति पाँति या रंग अथवा धर्म का विचार न रहे। परन्तु यह परीक्षा इंगलैंड में ही होने के कारण उपर्युक्त नियम से भारतीयों को यथेष्ट लाभ न मिला।

कम्पनी का अन्त—सन् १८५७ ई० की राज्य-क्रान्ति के पश्चात् अगले वर्ष कम्पनी का अन्त होगया और भारतवर्ष का शासन प्रबंध कम्पनी के हाथ से निकल कर पार्लिमैन्ट के अधीन होगया। कम्पनी ने अपनी स्थापना के समय से लगभग डेढ़ सौ वर्ष, सन् १७५७ ई० तक व्यापार विस्तार किया, और पश्चात् सौ वर्ष तक विविध युक्तियों से अपना राज्य बढ़ाया। इस प्रकार सन् १८५७ ई० की राज्य क्रान्ति के समय, वर्तमान ब्रिटिश भारत का बहुत सा भाग अंगरेजों के अधिकार में आ गया था। बंगाल-विहार-उड़ीसा की बात पहले कही जा चुकी है। उसके पश्चात् राजनीति की कई एक कूट चालों से मरहठों की संघ-शक्ति टूटने पर महाराष्ट्र प्रान्त तथा दिल्ली आगरे का प्रान्त कम्पनी के हाथ आया, और मैसूर के सुल्तान

हैदर और टीपू के परास्त होने पर वर्तमान मद्रास प्रान्त की नींव पड़ी। पश्चात् वीर केसरी रणजीत की मृत्यु पर सन् १८४५-४६ ई० तथा १८४८-४९ ई० के दो सिख युद्धों के बाद पंजाब कम्पनी के सीमान्तर्गत हुआ। वारिस न होने अथवा कुप्रबन्ध के आधार पर लार्ड डलहौज़ी ने अवध, नागपुर, सतारा, झांसी आदि कई देशी रियासतें कम्पनी के राज्य में मिला लीं। इससे राज्य क्रान्ति के समय के ब्रिटिश भारत के क्षेत्र का कुछ अनुमान हो सकता है। इसका कुछ विशेष परिचय आगे पाँचवें परिच्छेद में दिया जायगा।

दूसरा परिच्छेद
पार्लिमैंट का शासन

—: * :—

पिछले परिच्छेद में कहा गया है, कि कम्पनी अपने व्यापाराधिकार के लिये पहले इंगलैंड के शासकों से सनद लेती थी, पीछे पार्लिमैंट से लेने लगी। सन् १७७३ ई० से पार्लिमैंट का कम्पनी को नियंत्रण करने का अधिकार बढ़ता गया। इस परिच्छेद में पार्लिमैंट का विशेष, और अगले परिच्छेदों में प्रसंगानुसार उल्लेख होगा। अतः इस संस्था के सम्बन्ध में मुख्य मुख्य बातें यहाँ बतलाई जाती हैं।

ब्रिटिश पार्लिमैंट—इसके संगठन में समय समय पर परिवर्तन होता रहा है। इसके प्रधान अंग तीन हैं:—(१) बादशाह (या रानी), जो भारतवर्ष का सम्राट् (या साम्राज्ञी) है। (२) ब्रिटिश प्रतिनिधि सभा (हाउस-आफ़-कामन्स) और (३) ब्रिटिश सरदार सभा (हाउस-आफ़-लार्डस)। ब्रिटिश

प्रतिनिधि सभा में लगभग छः सौ सदस्य होते हैं, ये सर्व साधारण द्वारा प्रति पाचवें वर्ष निर्वाचित होते हैं। ब्रिटिश सरदार सभा में लगभग सात सौ सदस्य होते हैं, इनमें से अधिकांश वंशागत, तथा कुछ पादरी और जज आदि होते हैं।

बादशाह को शासन कार्य में परामर्श देने के लिये एक गुप्त सभा (प्रिवी कौंसिल) होती है, इसके बहुत से सदस्य राज्य-परिवार से सम्बन्धित होते हैं। कुल सदस्यों की संख्या तीन सौ से ऊपर हो जाती है। इस सभा की एक जूडीशल (न्याय सम्बन्धी) कमेटी भारतवर्ष तथा ब्रिटिश उपनिवेशों आदि की ऊँची अदालतों के फैसलों की अपील सुनती है।

गुप्त सभा के बहुत बड़ी होने के कारण बादशाह को सलाह देने का काम अधिकांश में मंत्री मंडल करता है। शासन कार्य के लिये लगभग पचास मंत्री (मिनिस्टर) होते हैं, इनके समूह को मन्त्री दल कहते हैं। कुछ मुख्य मुख्य विभागों के मंत्रियों की एक अन्तरंग सभा होती है, इसे मंत्री मंडल (कैबिनेट) कहते हैं। इसमें प्रधान मंत्री के अतिरिक्त लगभग बीस मंत्री होते हैं। यह मंत्री मंडल सब शासन कार्य करता है, और अपने कार्य के लिये पार्लिमैंट के प्रति उत्तरदायी होता है। कोई मंत्री मंडल उसी समय तक रहता है, जब तक कि पार्लिमैंट में उसकी नीति के समर्थन करने वालों का बहुमत हो। यद्यपि शासन विधान के अनुसार बादशाह को बहुत से, महत्व-पूर्ण विषयों के अधिकार हैं, वह अब आमतौर से उन्हें अपने मंत्रियों की सलाह के बिना अमल में नहीं लाता। शासन कार्यों में बादशाह के अधीन होने का अर्थ भी पार्लिमैंट के अधीन होना है।

भारतवर्ष के शासन से पार्लिमैंट का सम्बन्ध—पहले बताया जा चुका है कि भारतवर्ष के शासन प्रबन्ध से पार्लिमैंट का कुछ विशेष सम्बन्ध सन् १७७३ ई० से हुआ, जबकि रेग्यूलेटिंग ऐक्ट बना। उस समय से प्रति बीसवें वर्ष कम्पनी की सनद बदलते हुए, पार्लिमैंट भारतवर्ष के शासन सुधार के सम्बन्ध में कानून बनाती थी। सन् १७९३, १८१३, १८३३, और १८५३ ई० के कानूनों का, तथा १८५७ ई० की भारतीय राज्य क्रान्ति के पश्चात् भारतवर्ष का शासन कम्पनी के हाथ से निकल कर पार्लिमैंट के अधिकार में जाने का, उल्लेख पहले हो चुका है।

सन् १८५८ ई० में पार्लिमैंट की सम्मति से इंगलैंड की रानी विक्टोरिया ने भारतीय शासन सम्बन्धी सब अधिकार अपने हाथ में ले लिये और राजकीय घोषणा द्वारा प्रतिज्ञा की कि देशी राज्यों के अधिकारों की रक्षा की जायगी, प्रजा के धार्मिक विचारों में हस्तक्षेप न होगा, जाति या धर्म का पक्षपात न कर भारतीयों को योग्यतानुसार सरकारी पद और नौकरियाँ दी जायँगी, तथा उनके साथ ब्रिटिश प्रजा के समान व्यवहार किया जायगा।

सन् १८५८ ई० का क़ानून—सन् १८५८ ई० में ब्रिटिश पार्लिमैंट ने भारतवर्ष के सुशासन का क़ानून बनाया। इसके अनुसार भारतवर्ष के शासन प्रबंध का अधिकार कम्पनी के हाथ से निकल कर पार्लिमैंट के अधीन हुआ। अब कम्पनी की संचालक-समिति (कोर्ट-आफ डायरेक्टर्स) और नियंत्रण-बोर्ड उठा दिया गया। भारतवर्ष के शासन के लिये एक राज मंत्री (भारत मंत्री) और उसकी सभा (इंडिया कौंसिल) की सृष्टि

हुई। भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल को 'वायसराय' (राज-प्रतिनिधि) का भी पद दिया गया।

सन् १८५८ ई० के बाद भारतीय शासन सुधार सम्बन्धी जो प्रगति हुई तथा क़ानून बने, उनका संक्षेप में परिचय आगे दिया जाता है।

सन् १८६१ ई० का कौंसिल क़ानून—सन् १८६१ ई० में पार्लिमेंट ने 'इंडियन कौंसिलस ऐक्ट' पास किया। इसके अनुसार मद्रास और बम्बई की सरकारों को क़ानून बनाने का पुनः अधिकार दिया गया। यह व्यवस्था की गयी कि क़ानून बनाने के काम के लिये प्रबन्धकारिणी कौंसिल के सदस्यों में कुछ गैर-सरकारी सदस्य भी सरकार द्वारा नामज़द किये जाया करें। इस प्रकार व्यवस्थापक परिषदों का सूत्रपात हुआ। इस क़ानून के अनुसार पीछे बम्बई मद्रास के अतिरिक्त कई अन्य प्रान्तों में भी व्यवस्थापक परिषदों की स्थापना हुई। स्मरण रहे कि इन सब व्यवस्थापक परिषदों में सरकारी सदस्यों की ही संख्या अधिक रही और इन परिषदों की स्थापना हो जाने पर भी सरकार के अधिकार यथावत् बने रहे।

भारतवर्ष में अंगरेजी शिक्षा का प्रचार हो रहा था, नवीन विचारों, भावनाओं और आकाँक्षाओं का उदय हो रहा था, राष्ट्रीयता की वृद्धि हो रही थी। विचारशील सज्जनों को यहाँ की राजनैतिक स्थिति बहुत असन्तोष-प्रद प्रतीत हुई। इसके फल-स्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहाँ शासन सुधार का वैध और संगठित आन्दोलन आरम्भ हो गया। कुछ सभा समितियों की स्थापना के बाद सन् १८८५ ई० में राष्ट्र-सभा अर्थात्

कांग्रेस की स्थापना हुई ; और अंशतः इस के प्रयत्न से अगला कौंसिल क़ानून बनाया गया।

सन् १८९२ ई० का कौंसिल क़ानून—इस क़ानून से विश्वविद्यालयों, म्युनिसिपैलिटियों और जिला-बोर्डों को तथा जागीरदार आदि विशेष व्यक्ति-समूहों को व्यवस्थापक परिषदों के लिये सदस्य चुनने का अधिकार मिला। (यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन था)। सदस्यों को परिषदों में, निर्धारित नियमों के अनुसार प्रश्न पूछने तथा वार्षिक आय-व्यय अनुमान पत्र पर वाद-विवाद करने का अधिकार दिया गया।

भारतीय नेशनल कांग्रेस अर्थात् राष्ट्र सभा तथा अन्य संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय जागृति का कार्य चल रहा था। शासन सुधारों की माँग बढ़ती जा रही थी। इधर लोकमत की अवहेलना करके अधिकारियों ने बंगाल प्रान्त के दो भाग करने का अप्रिय कार्य कर डाला। इससे शासन सुधार का आन्दोलन और तीव्र हुआ।

सन् १९०९ ई० का कौंसिल क़ानून—सन् १९०९ ई० में ब्रिटिश पार्लिमेंट ने इन्डियन् कौंसिल्स ऐक्ट पास किया, इससे होने वाले परिवर्तनों को भारत-मंत्री मोरले, तथा गवर्नर-जनरल मिंटो के नाम पर 'मारले-मिंटो सुधार' कहा जाता है। इनसे पूर्व भारत सरकार के, सेनापति सहित सातों सदस्य अंगरेज होते थे, अब उनमें एक भारतीय होने लगा। भारतीय व्यवस्थापक सभा में अब साठ सदस्य हो गये। प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों में सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी, और उनमें गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या की वृद्धि हुई। कुछ सदस्य प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित भी होने लगे। परन्तु अधिकांश निर्वाचन सर्व

साधारण द्वारा न होकर म्युनिसिपैलिटियों आदि संस्थाओं द्वारा, (अप्रत्यक्ष) होता था। मुसलमानों और सिखों की ओर से अलग प्रतिनिधि चुने जाने लगे, इस प्रकार जाति-गत अर्थात् साम्प्रदायिक निर्वाचन का बीज बोया गया, जो पीछे बहुत अनिष्टकर सिद्ध हुआ।

अब व्यवस्थापक सभाओं के सदस्यों के अधिकार भी कुछ बढ़ाये गये, उन्हें विशेषतया आय-व्यय अनुमान पत्र पर वाद-विवाद करने की अधिक स्वतंत्रता दी गयी। परन्तु वे उस पर अथवा उसकी किसी मद पर अपना मत नहीं दे सकते थे। गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा के अतिरिक्त प्रान्तीय प्रबंध-कारिणी सभाओं में भी भारतीय नियुक्त होने लगे। लन्दन (इंगलैंड) की इंडिया कौंसिल नामक, भारत मंत्री की सभा में दो भारतीयों की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी।

इन सुधारों से थोड़े से आदमियों को ही कुछ संतोष हुआ, वह भी बहुत समय तक न रहा। इस प्रकार आन्दोलन चलता रहा।

महायुद्ध और नवीन शासन नीति—सन् १९११ ई० में सम्राट् जार्ज के घोषणानुसार बंगाल के दो टुकड़े जोड़ दिये गये। इससे जनता कुछ प्रसन्न हुई, परन्तु असन्तोष के अन्य कई कारण बने रहे। सन् १९१४ ई० से आरम्भ होने वाले योरपीय महायुद्ध से अन्यान्य स्थानों में भारतवर्ष में भी आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की चर्चा बढ़ी। यहाँ की राष्ट्र-सभा ने स्वराज्य की योजना बनायी, और सन् १९१६ ई० में मुस्लिम लीग के साथ मिल कर स्वराज्य की माँग उपस्थित की। क्रमशः आन्दोलन की गति बढ़ती गयी।

अन्ततः सन् १९१७ ई० में भारत मंत्री ने ब्रिटिश पार्लिमैंट में, भारतवर्ष के शासन के लिये नवीन नीति की घोषणा की, जिसकी मुख्य बातें यह हैं :—

१—भारतवर्ष में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित करने का ध्येय रखा जाय, और इसके लिए भारतवासियों को शासन व्यवस्था के प्रत्येक भाग में क्रमशः अधिकाधिक भाग दिया जाय।

२—भारतवर्ष जो उन्नति करे, वह ब्रिटिश साम्राज्य का भाग रहते हुए ही करे।

३—प्रान्तीय सरकारों को आन्तरिक शासन के लिए, भारत सरकार से अधिकाधिक स्वतंत्रता दी जाय।

४—उन्नति-क्रम के समय और सीमा का निर्णय ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार करेंगी, (भारतीय जनता नहीं)।

इस नीति का अंतिम भाव बहुत असंतोष-प्रद रहा, क्योंकि इससे सूचित होता था कि भारतवर्ष को स्वयं अपना भाग्य निर्णय करने का अधिकार नहीं। अस्तु, इस नीति के अनुसार शासन सुधार क़ानून दिसम्बर १९१९ में बना। इसके अनुसार किये गये सुधारों को मांटेग्यू (भारत मंत्री) और चेम्सफोर्ड (गवर्नर-जनरल) के नाम पर, संक्षेप में 'मांट-फोर्ड' सुधार कहते हैं।

सन् १९१९ ई० का शासन सुधार क़ानून—इस कानून का उद्देश्य भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था। इससे भारत मंत्री के सम्बन्ध में विशेष अन्तर नहीं आया, इंगलैंड में एक हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया, जो भारत सरकार की ओर से इंगलैंड में एजन्ट का कार्य करे। यहां उत्तरदायी शासन केन्द्र में आरम्भ नहीं किया गया; भारत

सरकार ब्रिटिश पार्लिमैंट के प्रति ही उत्तरदायी रही। हाँ, उसके भारतीय सदस्यों की संख्या अब से तीन होने लगी। भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी, और उसमें एक की जगह दो सभाएँ की गयीं:—भारतीय व्यवस्थापक सभा और राज्य परिषद्।

उत्तरदायी शासन निम्नलिखित नौ प्रान्तों में आरम्भ किया गया:—बंगाल, बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्य प्रान्त बरार, बर्मा, और आसाम। इन प्रान्तों में शासन सम्बन्धी विषय दो भागों में विभक्त किये गये:—(१) रक्षित ('रिजर्वड') और (२) हस्तान्तरित (ट्रान्सफर्ड)। रक्षित विषयों के प्रबन्ध का अधिकार गवर्नर और उसकी प्रबन्ध-कारिणी सभा को दिया गया। ये भारत सरकार और भारत मंत्री द्वारा ब्रिटिश पार्लिमैंट के प्रति उत्तरदायी रखे गये। हस्तान्तरित विषयों का अधिकार गवर्नर और उसके मंत्रियों को दिया गया। मंत्रियों को प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के प्रति उत्तरदायी किया गया। प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी, और उनमें निर्वाचित सदस्यों की अधिकता रखने की व्यवस्था की गयी। इन परिवर्तनों के अनुसार होने वाले केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन का स्वरूप, आगे बताया जायगा। उपर्युक्त क़ानून से मताधिकार के संशोधित नियमों के अनुसार ७५ लाख व्यक्तियों को प्रत्यक्ष निर्वाचन अधिकार दिया गया।

इन सुधारों के पश्चात्—सन् १९१९ ई० की कांग्रेस ने इन सुधारों को असंतोषप्रद, अपूर्ण और निराशाजनक घोषित किया। और, अनेक आदमियों ने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में असहयोग

का मार्ग ग्रहण किया। सन् १९२० ई० में कांग्रेस के उद्येश्य में से भारतवर्ष के ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहने की बात निकाल दी गयी। इस वर्ष नये सुधारों के अनुसार व्यवस्थापक संस्थाओं का पहला निर्वाचन हुआ। अनेक योग्य व्यक्तियों ने असहयोगी होने के कारण उसमें भाग न लिया। १९२२ में असहयोगियों ने अन्य बहिष्कारों में श्रद्धा रखते हुए भी, कौंसिलों में भाग लेना और 'थोथे सुधारों' को नष्ट करना उचित समझा। सुधारों के बाद १९२३ में जब व्यवस्थापक सभाओं का दूसरा निर्वाचन हुआ, उस में इन्होंने यथाशक्ति भाग लिया।

सन् १९२३ ई० से १९२६ ई० तक, बंगाल और मध्य प्रान्त में मंत्रियों का वेतन अस्वीकृत, अथवा नाम मात्र को स्वीकृत होता रहा। १९२४ में भारतीय व्यवस्थापक सभा में इस आशय का प्रस्ताव पास किया गया कि भारतवर्ष में विविध राजनैतिक दलों या स्वार्थों के प्रतिनिधियों की एक गोल मेज सभा (Round Table Conference) हो, और उसमें भावी शासन सुधारों का निश्चय किया जाय। भारत सरकार और भारत मंत्री ने इसे अस्वीकार किया। इस पर व्यवस्थापक सभा ने बजट की कई मदें तथा कर लगाने वाला मसविदा (Finance Bill) नामंजूर कर दिया; सरकार को अपने विशेष अधिकार द्वारा काम चलाना पड़ा।

निदान, इस प्रकार सरकार के लिए व्यवस्थापक सभाओं के मतानुसार शासन चक्र चलाने में बहुत कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, इन्हें दूर करने के विषय पर विचार करने के लिये, सन् १९२४ ई० के अगस्त मास में भारत सरकार द्वारा एक कमेटी नियुक्त की गयी। कमेटी की दो रिपोर्ट प्रकाशित हुईं। बहुमत

ने कुछ कठिनाइयाँ दूर करने के उपाय बतलाये। अल्प मत ने यह सिद्ध किया कि सुधार क़ानून में विशेष परिवर्तन किये बिना शासन सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर नहीं की जा सकतीं। भारत सरकार ने अल्प-मत-रिपोर्ट अस्वीकार करके, भारतीय व्यवस्थापक सभा में बहु-मत-रिपोर्ट स्वीकार करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। इसके संशोधन में, सितम्बर १९२५ में, व्यवस्थापक सभा ने एक उप-प्रस्ताव पास किया और सुधार सम्बन्धी राष्ट्रीय माँग सूचित की, जिसे सरकार ने स्वीकार नहीं किया।

सन् १९१९ ई० के क़ानून में ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि सन् १९२९ ई० में एक कमीशन नियुक्त किया जाय जो भारतवर्ष की राज्यपद्धति, ब्रिटिश भारत में शिक्षा की वृद्धि, और प्रतिनिधिक संस्थाओं के विकास तथा इस सम्बन्ध में अन्य विषयों की जाँच करे, और इस बात की रिपोर्ट करे कि उस समय जो उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन प्रचलित हो, उसे कहाँ तक बढ़ाना, बदलना या घटाना ठीक होगा। इसी में इस प्रश्न का विचार रहे कि प्रान्तिक व्यवस्था के लिए एक एक की जगह दो दो व्यवस्थापक परिषदों की स्थापना करना अभीष्ट है या नहीं।

उपर्युक्त कमीशन सन् १९२७ ई० में नियत हुआ और, अपने सभापति के नाम से साइमन कमीशन कहलाया। सभापति को मिला कर इसमें सात सदस्य थे, सब के सब अंगरेज़; किसी भारतवासी को इसका सदस्य नहीं बनाया गया। इस लिए यहाँ के विविध राजनैतिक दलों ने इसका बहिष्कार कर दिया। कमीशन ने यह स्वीकार किया था कि वह केन्द्रीय विषयों के सम्बन्ध में विचार करने के लिए भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की, और प्रान्तीय विषयों में विचार करने के लिए

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों की, कमेटियों के सहयोग से काम करेगा। भारतीय व्यवस्थापक सभा ने कमेटी बनाना अस्वीकार कर दिया। इस पर उसकी ओर के सदस्य गवर्नर-जनरल ने नियुक्त किये। कुछ प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों ने प्रान्तीय कमेटियाँ अवश्य बनायीं, परन्तु प्रायः सरकारी या नामज़द सदस्यों के मत के प्रभाव से ही। राष्ट्रीय विचार वाले सज्जनों ने इस कमीशन के सामने गवाही देना स्वीकार नहीं किया।

इस कमीशन की रिपोर्ट सन् १९२९ ई० में प्रकाशित हुई। पश्चात् सन् १९३० ई० से सन् १९३२ ई० तक लन्दन में तीन बार गोल मेज सभा हुई, इनमें से केवल दूसरी में भारतीय राष्ट्र सभा ने महात्मा गाँधी को प्रतिनिधि-रूप भेज कर भाग लिया। गोल मेज सभाओं तथा विविध कमेटियों के परिणाम-स्वरूप शासन सम्बन्धी प्रस्ताव श्वेत पत्र (White Paper) में प्रकाशित किये गये। और यह श्वेत पत्र पार्लिमेंट की दोनों सभाओं के सामने विचारार्थ उपस्थित किया गया। पार्लिमेंट ने सन् १९३५ ई० में भारतीय शासन विधान की रचना की। पहले इसका प्रान्तों सम्बन्धी भाग ही अमल में लाया जाने लगा है केन्द्र सम्बन्धी भाग के अमल में आने में अभी देर है। विधान का उद्देश्य प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना बताया गया है। इसके अनुसार होने वाली शासन पद्धति का परिचय आगे प्रसंगानुसार दिया जायगा।

तीसरा परिच्छेद

भारत मंत्री

—: * :—

पहले कहा जा चुका है कि सन् १७८४ ई० के पिट के क़ानून के अनुसार भारत सरकार पर, कम्पनी के साथ पार्लिमैंट का भी नियंत्रण होने लगा था। कम्पनी का प्रतिनिधि कोर्ट-आफ-डायरेक्टर्स अर्थात् संचालक समिति थी, और पार्लिमैंट का प्रतिनिधित्व बोर्ड-आफ-कन्ट्रोल अर्थात् नियंत्रण समिति करती थी। बोर्ड में पहले छः सदस्य थे, पीछे कम हो गये। जब जब पार्लिमैंट ने कम्पनी की सनद बदली, पार्लिमैंट का अर्थात् उसके प्रतिनिधि, बोर्ड का अधिकार और उत्तरदायित्व बढ़ता गया। १८५८ ई० में कम्पनी के शासन का अंत हुआ, बोर्ड भी उठा दिया गया और भारतीय शासन सम्बन्धी वे सब अधिकार जो पहिले ईस्ट इंडिया कम्पनी को थे, भारत मंत्री को रहने लगे। भारत मंत्री के दो सहायक मंत्री होते हैं। एक स्थायी, और दूसरा ब्रिटिश पार्लिमैंट की उस सभा का सदस्य जिसमें भारत मन्त्री न हो। भारत मंत्री के दफ़्तर को 'इंडिया आफ़िस' कहते हैं। यह लन्दन (इंगलैंड) में है।

भारत मन्त्री और उसका कार्य्य—भारत मंत्री को सम्राट्, अपने प्रधान मंत्री के परामर्श से, नियत करता है। ब्रिटिश मंत्री मण्डल का सदस्य होने के कारण, भारत-मंत्री की नियुक्ति व बरख़ास्तगी वहाँ के अन्य राजमंत्रियों

के साथ लगी हुई है। वह पार्लिमेंट के सामने मई महीने की पहली तारीख़ के बाद, जिस दिन पार्लिमेंट का अधिवेशन प्रारम्भ हो, उससे २८ दिन के भीतर, प्रति वर्ष भारतवर्ष के आय-व्यय का हिसाब पेश करता है। उसी समय, वह इस बात की सविस्तर रिपोर्ट देता है कि गत वर्ष भारत की नैतिक, सामाजिक व राजकीय उन्नति किस प्रकार अथवा कितनी हुई है। ब्रिटिश प्रतिनिधि सभा की एक कमेटी इस पर विचार करती है और, भारत-मंत्री या उसका प्रतिनिधि इसे समझाने के लिए व्याख्यान देता है। उस समय पार्लिमेंट के सदस्य भारतवर्ष के शासन सम्बन्धी विषयों पर आलोचना कर सकते हैं। इसे 'भारतीय बजट की बहस' कहते हैं।

समय समय पर पार्लिमेंट को भारत सम्बन्धी आवश्यक सूचना देते रहना भी भारत मंत्री ही का काम है। सम्राट् चाहे तो इसके द्वारा भारत सरकार के बनाये क़ानून को रद्द कर सकता है। भारतवर्ष के जङ्गी लाट (कमांडरन चीफ़) बङ्गाल, बम्बई और मद्रास के गवर्नर, इनकी कौंसिलों के सदस्य, हाई कोर्टों के जज, तथा अन्य उच्च राजकर्मचारियों की नियुक्ति के लिए, यह सम्राट् को सम्मति देता है, भारत सरकार के सब बड़े बड़े अफ़सरों को यह आज्ञा दे सकता है, और जिसे चाहे उसे नौकरी से छुड़ा सकता है। यह उन्हें अपने अधिकार का अनुचित बर्ताव करने से रोक सकता है।

यदि भारत मंत्री भारत सरकार को किसी से युद्ध करने की आज्ञा दे तो उसे इस बात की सूचना तीन महीने के अन्दर, पार्लिमेंट की दोनों सभाओं को देनी पड़ती है। यदि पार्लिमेंट बन्द हो तो खुलने पर, एक महीने के भीतर सूचना

दी जाती है। यदि भारत की सीमा के बाहर युद्ध हो तो, पार्लिमैंट की दोनों सभाओं की स्वीकृति बिना, उसका व्यय भारत के कोष से नहीं दिया जा सकता।

भारत मंत्री, भारतीय शासन के लिए पार्लिमैंट के सामने उत्तरदाता है, उसे भारतीय शासन व्यवस्था के निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार है।

इंडिया कौंसिल—भारत मंत्री को शासन सम्बन्धी कार्य में सहायता या परामर्श देने वाली सभा 'इंडिया कौंसिल' कहलाती है। इसका अधिवेशन भारत मंत्री की आज्ञा से एक मास में एक बार होता है। इसका सभापति भारत मंत्री अथवा उसका सहकारी मंत्री होता है, या भारतमंत्री द्वारा नामज़द, कौंसिल का कोई सदस्य, होता है। इस कौंसिल के सदस्यों को भारत मंत्री नियुक्त करता है। भारत मंत्री को कौंसिल में साधारण मत (वोट) देने के अतिरिक्त एक अधिक वोट देने का भी अधिकार है। वह विशेष अवसरों पर इस कौंसिल के बहुमत बिना भी कार्य कर सकता है।

भारत-मंत्री इंडिया कौंसिल की कुछ कमेटियाँ बना सकता है और यह आदेश कर सकता है कि उन कमेटियों के अधीन क्या क्या विभाग रहेंगे, और कौंसिल का कार्य किस पद्धति से किया जायगा। साधारणतया भारतवर्ष को कोई आज्ञा या सूचना भेजने, अथवा गवर्नर-जनरल या प्रान्तिक सरकारों के साथ भारत मंत्री का पत्र व्यवहार होने का ढंग कौंसिल-युक्त भारत मंत्री द्वारा निश्चित किया जाता है।

कौंसिल के सदस्य—कई एक परिवर्तनों के बाद इस समय इस कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ से १२ तक रहने

लगी है। इनमें से आधे सदस्य वे ही हो सकते हैं जो भारतवर्ष में भारत सरकार की नौकरी, कम से कम दस वर्ष तक कर चुके हों, और, जिन्हें वह नौकरी छोड़े पाँच वर्ष से अधिक न हुए हों। प्रत्येक सदस्य पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है; विशेष कारण होने से उसका समय पाँच वर्ष तक और बढ़ाया जा सकता है। सदस्य किसी भी देश या धर्म का हो, इस बात का कोई बन्धन नहीं है। सन् १९०७ ई० से पहले कोई भारतीय इस कौंसिल का सदस्य न था; अब इसमें प्रायः तीन हिन्दुस्तानी होते हैं। प्रत्येक सदस्य का वार्षिक वेतन १२०० पौंड हैं, भारतीय सदस्यों को ६०० पौंड वार्षिक भत्ता और मिलता है।

कौंसिल के सदस्य वैदेशिक विषयों में, युद्धनीति में, तथा देशी रियासतों के मामलों में, बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं कर सकते, उन्हें कोई स्वतंत्र अधिकार प्राप्त नहीं है, ये भारत मंत्री के आज्ञानुसार लन्दन में भारतवर्ष सम्बन्धी काम करते हैं। इन सदस्यों को पार्लिमेंट में बैठने का अधिकार नहीं है, इन्हें इनके काम से हटाने का अधिकार पार्लिमेंट को ही है।

भारत मंत्री और उसकी कौंसिल के नाम से लन्दन के बैंक-आफ़-इंगलैंड में भारत का खाता है। उसका हिसाब जाँचने के लिये एक लेखा परीक्षक (आडीटर) नियत है।

हाई कमिश्नर—यह अधिकारी पाँच वर्ष के लिये नियुक्त होता है, इसका वार्षिक वेतन तीन हज़ार पौंड है, जो भारतीय कोष से दिया जाता है। यह कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के अधीन है, और उसी के द्वारा भारत मंत्री की अनुमति से नियुक्त किया जाता है इसका काम है, ठेके देना,

इंडिया आफ़िस के स्टोर्स (Stores) विभाग, और इस के सम्बन्ध की हिसाब की शाखा, भारतीय विद्यार्थियों की शाखा, और भारतीय ट्रेड (व्यापार) कमिश्नर के कार्य का निरीक्षण।

भारत मंत्री के भारतीय शासन प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार—पहले कहा गया है कि भारत मंत्री को भारतीय शासन व्यवस्था को निरीक्षण तथा नियंत्रण करने का अधिकार है। सन् १९१९ ई० के शासन सुधारों से पूर्व उसका यह अधिकार बहुत अधिक था। निम्नलिखित विषयों में भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों को भारत मंत्री की स्वीकृति पहले मँगा लेनी पड़ती थी :—

(१) टैक्सों का घटाना या बढ़ाना, अथवा दूसरे ऐसे उपाय करना जिनसे भारतीय आय का सम्बन्ध हो।

(२) अर्थ या करेन्सी (मुद्रा व्यवस्था) नीति में परिवर्तन करना या ऋण सम्बन्धी कोई कार्य करना।

(३) वे सब विषय जिनसे शासन सम्बन्धी महत्व-पूर्ण प्रश्न उपस्थित हों, अथवा बहुत सा नये ढंग का या असाधारण व्यय बढ़े।

सन् १९१९ ई० के क़ानून से भारत-मंत्री के अधिकारों में कुछ कमी की गई है। उसके कुछ अधिकार भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों को दे दिये गये हैं। यह निश्चय किया गया है कि प्रान्तों में जो विषय हस्तान्तरित किये गये हैं उनमें उसका नियंत्रण बहुत परिमित रहे, जब तक कि किसी विषय का सम्बन्ध देश की शान्ति और सुव्यवस्था से न हो, भारत मंत्री उसमें हस्तक्षेप न करे। रक्षित विषयों में भी उसका नियंत्रण कुछ कम रहे, साधारणतः जब तक कि प्रान्तीय सरकार और व्यवस्थापक

परिषद् दोनों सहमत हों, वह हस्तक्षेप न करे। इसी प्रकार केन्द्रीय विषयों में जहाँ तक कि उनका सम्बन्ध देश के आन्तरिक हित से हो, भारत मंत्री का हस्तक्षेप यथा-सम्भव न हो।

गवर्नर-जनरल (और वाइसराय) तथा उस की कौंसिल अर्थात् भारत सरकार ब्रिटिश पार्लिमेंट के अधीन है। उनका कर्तव्य है कि वे भारत मंत्री के आदेशों का पालन करें, और जिस विषय सम्बन्धी जानकारी की उसे आवश्यकता हो, उसे यथा समय देते रहें। प्रत्येक महत्व-पूर्ण विषय में इन्हें उसकी सम्मति लेते रहना चाहिये। वह गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल से उनके किसी कार्य के सम्बन्ध में जवाब-तलब कर सकता है; ऐसी दशा में उन्हें अपने कार्य व्यवहार या नीति की सफ़ाई देनी होती है, अर्थात् उसका संतोष-जनक स्पष्टीकरण करना होता है।

भारत मंत्री गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के नाम जारी किये जाने वाले आदेश पत्रों (इन्स्ट्रूमैन्ट्स-आफ़-इन्स्ट्रकशन्स) का मसविदा पार्लिमेंट के सामने उपस्थित करता है और पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ सम्राट् से उन आदेश पत्रों को जारी करने का आवेदन करती हैं।

पार्लिमैंट और भारतवर्ष—पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष पर ब्रिटिश पार्लिमैंट का प्रभुत्व है। इंगलैंड नरेश, भारतवर्ष का सम्राट् कहलाता है, और ब्रिटिश मंत्री-मंडल का एक सदस्य भारत मंत्री यहाँ के शासन का निरीक्षण और नियंत्रण करता है। पार्लिमैंट भारतवर्ष सम्बन्धी जो कार्य करती है, उनमें से मुख्य ये हैं :—

(१) वह भारतवर्ष की शासन पद्धति निश्चित करती है, प्रचलित शासन पद्धति की जाँच के लिये कमीशन नियुक्त करती है, तथा उसमें परिवर्तन करने के लिये नया विधान बनाती है।

(२) भारतवर्ष के आय-व्यय का अनुमान पत्र तथा इस देश की उन्नति का विवरण प्रतिवर्ष पार्लिमैंट के सामने उपस्थित किया जाता है, उस अवसर पर सदस्य भारतीय शासन पद्धति की आलोचना कर सकते हैं।

(३) पार्लिमैंट की दोनों सभाओं के कुछ सदस्यों की एक कमेटी है, जो भारतवर्ष सम्बन्धी घटनाओं की जानकारी प्राप्त करती तथा, पार्लिमैंट को उनके सम्बन्ध में परामर्श देती है।

(४) भारत मंत्री का वेतन ब्रिटिश कोष से दिया जाता है, अतः बजट की इस मद्द पर विचार करने के समय पार्लिमैंट में भारतीय विषयों की चर्चा होती है।

(५) पार्लिमैंट के सदस्य कभी कभी भारतवर्ष सम्बन्धी प्रश्न पूछते, और प्रस्ताव करते हैं।

साधारणतया पार्लिमैंट के अधिकांश सदस्य भारतवर्ष सम्बन्धी विषयों में बहुत दिलचस्पी नहीं लेते, उन्हें अपने देश की, तथा साम्राज्य सम्बन्धी विविध समस्याओं से बहुत कम अवकाश मिलता है।

सन् १९३५ ई० का विधान और भारत मन्त्री—

सन् १९३५ ई० के विधान में यह व्यवस्था की गयी है कि भारतवर्ष में संघ की स्थापना हो जाने के बाद, भारत मन्त्री की सभा अर्थात् इंडिया कौंसिल तोड़ दी जाय। हाँ, उसके कुछ परामर्शदाता रहा करेंगे, उनकी संख्या तीन से कम, और छः से अधिक न होगी। उनकी नियुक्ति वह स्वयं

करेगा। भारत मन्त्री और उसके परामर्श-दाताओं तथा उसके विभाग के कर्मचारियों का वेतन और भत्ता, तथा अन्य खर्च ब्रिटिश सरकार के कोष से दिया जायगा।

नवीन विधान के अनुसार जिन विषयों में गवर्नर-जनरल को अपनी मर्जी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना होगा, उनमें वह भारत-मन्त्री के नियंत्रण में रहेगा, और उसके द्वारा समय समय पर दी जाने वाली आज्ञाओं का पालन करेगा।

प्रान्तों के गवर्नरों को जिन विषयों में अपनी मर्जी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करना होगा, उनमें वे गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में होंगे, परन्तु गवर्नर-जनरल का यह नियंत्रण अपनी मर्जी से होगा, अतः इस प्रान्तीय शासन सम्बन्धी कार्य पर भी भारत मन्त्री का ही नियंत्रण रहेगा, हाँ, यह नियंत्रण गवर्नर-जनरल के द्वारा होगा।

चौथा परिच्छेद

भारत सरकार

—: * :—

गवर्नर-जनरल या वायसराय—पहले बताया जा चुका है कि सन् १७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से बंगाल का गवर्नर, वहाँ का गवर्नर-जनरल बनाया गया था; और उसे मदरास और बम्बई की सरकारों पर कुछ नियंत्रण अधिकार दिये गये थे। सन् १७८४ ई० के पिट के क़ानून से और पीछे सन् १७९३ ई० के सनद क़ानून से उसके अधिकार क्रमशः बढ़ाए गए। सन् १८३३ ई० के सनद क़ानून से बंगाल का गवर्नर-जनरल भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल बनाया गया। इस समय उस पर

बंगाल के गवर्नर का भी कार्य भार रहा—इससे वह सन् १८५३ ई० का सनद क़ानून बनने पर मुक्त हुआ, जबकि बंगाल के लिये एक पृथक् लेफ़्टिनैंट गवर्नर की नियुक्ति हुई। उक्त वर्ष से गवर्नर-जनरल को किसी विशेष प्रान्त सम्बन्धी कार्य नहीं करना पड़ता, वह भारत सरकार का कार्य करता है, उसका सम्बन्ध समस्त भारतवर्ष भर से है।

पहले उसकी नियुक्ति कम्पनी के संचालकों द्वारा होती थी। सन् १८१३ ई० के सनद्-क़ानून से उसकी नियुक्ति की स्वीकृति सम्राट् द्वारा होने लगी। सन् १८५८ ई० में भारतवर्ष का राज्य प्रबंध कम्पनी के हाथ से निकल कर पार्लिमैंट के अधिकार में आया, उस समय से गवर्नर-जनरल भारतवर्ष का 'वाइसराय' भी कहा जाने लगा। वाइसराय का अर्थ है, 'सम्राट्-प्रतिनिधि'।

गवर्नर-जनरल ब्रिटिश भारत के प्रान्तीय शासन को निगरानी करता है, वह गवर्नरों से ऊपर है, इस लिये गवर्नर-जनरल कहलाता है। सम्राट्-प्रतिनिधि की हैसियत से वह देशी रियासतों में जाता है, सभा या दरबार करता है, और घोषणा-पत्र आदि निकालता है। इसलिए वह वायसराय कहलाता है। साधारण व्यवहार में 'गवर्नर-जनरल' और 'वायसराय' शब्दों में कोई भेद नहीं माना जाता। अपने प्रधान मंत्री की सिफ़ारिश से सम्राट् किसी योग्य अनुभवी, एवं साधारणतः 'लार्ड' उपाधि-प्राप्त व्यक्ति को गवर्नर-जनरल नियत करता है। इसकी अवधि प्रायः पाँच साल की होती है, परन्तु यह समय सुभीते के अनुसार घटाया बढ़ाया जा सकता है।

गवर्नर-जरनल के अधिकार—अपनी प्रबन्धकारिणी सभा की अनुपस्थिति में गवर्नर-जनरल, किसी प्रान्तिक सरकार

या किसी पदाधिकारी के नाम, स्वयं कोई आज्ञा निकाल सकता है। आवश्यकता होने पर वह ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग की शान्ति और सुशासन के लिए छः महीने के वास्ते अस्थायी क़ानून (आर्डिनैंस) बना सकता है। यदि वह चाहे तो किसी आदमी को, जिसे किसी अदालत ने फ़ौजदारी मामले में अपराधी ठहराया हो, बिना किसी शर्त के, या कुछ शर्त लगाकर, क्षमा कर सकता है। उसे (१) भारत सरकार, (२) भारतीय व्यवस्थापक मंडल, (३) प्रान्तीय सरकारों, (४) प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों, और (५) देशी राज्यों के नरेन्द्र मंडल के सम्बन्ध में विविध अधिकार हैं; उनका वर्णन आगे प्रसंगानुसार किया जायगा।

उसकी प्रबन्धकारिणी सभा (कौंसिल)—पहले बताया जा चुका है कि आरम्भ में बंगाल, मद्रास और बम्बई की सरकारें एक दूसरे से स्वतंत्र थीं। परन्तु सन् १७७३ ई० में रेग्युलेटिंग ऐक्ट पास होने से बम्बई-मद्रास सरकार बंगाल सरकार के अधीन रक्खी गयीं। बंगाल का गवर्नर, गवर्नर-जनरल कहलाया जाने लगा। उसकी सहायता के लिये चार मेम्बरों की कौंसिल बनायी गयी। उक्त ऐक्ट के अनुसार गवर्नर-जनरल अपनी कौंसिल के मन्तव्यों के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता था। सन् १७८४ ई० में पिट का क़ानून पास हुआ जिस से गवर्नर-जनरल को मद्रास तथा बम्बई पर पूरा अधिकार हो गया। कौंसिलों के मेम्बरों की संख्या घटा कर तीन कर दी गयी, इनमें से एक जंगी लाट और दो अन्य मेम्बर होते थे। अब गवर्नर-जनरल को यह अधिकार मिल गया था कि वह आवश्यकता होने पर कौंसिल के मत के विरुद्ध भी कार्य कर

सके। सन् १८३३ ई० में एक क़ानूनी सलाहकार इंगलैंड से भेजा गया। इस पदाधिकारी को १८५३ ई० में कार्यकारिणी कौंसिल में बैठने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार पुनः मेम्बरों की संख्या सन् १७७४ ई० की भाँति चार हो गयी। सन् १८६१ ई० के इंडिया कौंसिल के ऐक्ट से गवर्नर-जनरल की कौंसिल में पाँचवाँ मेम्बर बढ़ाया गया और जंगी लाट भी एक अलग मेम्बर वाइसराय की कौंसिल में बनाया गया। सन् १९०७ ई० में पुनः परिवर्त्तन हुआ। अब गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या प्रायः छः होती है, यह आवश्यकतानुसार घट बढ़ सकती है। हाँ, कम से कम तीन सदस्य ऐसे होने चाहिये जिन्होंने भारतवर्ष में दस वर्ष भारत सरकार की नौकरी की हो, क़ानूनी योग्यता के लिए एक सदस्य हाईकोर्ट का ऐसा वकील, अथवा इंगलैंड या आयर्लैंड का ऐसा बैरिस्टर होना चाहिये जिसने दस वर्ष वकालत (प्रैक्टिस) की हो। इस तरह का कोई नियम नहीं कि इस सभा में हिन्दुस्थानियों की अमुक संख्या रहे, अब प्रायः तीन सदस्य हिन्दुस्थानी होते हैं। सब सदस्य, सम्राट् की अनुमति से, पाँच वर्ष के लिए चुने जाते हैं।

भारत सरकार—गवर्नर-जनरल और उसकी प्रबन्धकारिणी कौंसिल को मिला कर भारत सरकार (गवर्नमेंट-आफ़-इंडिया) कहते हैं। कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल (गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल) कहने से भी इसका बोध होता है। 'कौंसिल' से मतलब प्रबन्धकारिणी कौंसिल का होता है, कारण कि 'कौंसिल' पहले प्रबन्धकारिणी ही थी, व्यवस्थापक का तो जन्म बहुत वर्ष पीछे हुआ। अस्तु, गवर्नर-जनरल के सम्बन्ध में जो पहले लिखा गया है, उससे विदित होगा कि वह भारत सरकार का

सब से महत्व-पूर्ण अंग है, उसे अन्य अधिकारियों की अपेक्षा विशेष अधिकार है।

कार्य विभाग—इस समय भारत सरकार के कार्य निम्न लिखित आठ विभागों अर्थात् डिपार्टमेंटों (Departments) में विभक्त हैं :—

१—अर्थ या 'फ़ाइनेंस' (Finance) विभाग। यह विभाग भारत सरकार का बजट बनाता है, और सरकारी आय-व्यय का हिसाब रखता है। सरकारी कर्मचारियों का वेतन, इनकी छुट्टी, पैंशन, भत्ता व पुरस्कारादि विषय इसी के अधीन हैं। देशी राज्यों के नज़राने और आय के कई एक श्रोतों, अफ़ीम, चुंगी, सिक्का और टकसाल का भी प्रबन्ध यही विभाग करता है।

२—स्वदेश या 'होम' (Home) विभाग। यह देश के भीतरी शासन का निरीक्षण और प्रान्तीय सरकारों के कार्य-संचालन की देख-रेख करता है। इंडियन सिविल सर्विस, क़ानून, न्याय, जेल, काला पानी, अनधिकृत सम्पत्तियाँ, ईसाई धर्म, सिविल मैडिकल सर्विस तथा पुलिस सम्बन्धी उच्च कर्मचारियों की संख्या ठहराना इसी विभाग का काम है। यही विभाग भारत सरकार के दफ्तर और इम्पीरियल लायब्रेरी का प्रबन्ध करता है।

३—क़ानून या 'ला' (Law) विभाग। यह व्यवस्थापक सभा में क़ानून बनाने का तथा अन्य क़ानून सम्बन्धी कार्यों का प्रबन्ध करता है, तथा भारत सरकार को क़ानूनी विषयों में परामर्श देता है।

४—उद्योग तथा श्रम या 'इंडस्ट्री ऐंड लेबर' (Industry and Labour) विभाग। यह कारखानों तथा मज़दूरी सम्बन्धी बातों का प्रबन्ध करता है। यह डाक, तार, हवाई यात्रा, औद्योगिक उन्नति, पेटन्ट, कापी-राइट आदि विषयों का विचार करता है।

५—शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि या 'एज्यूकेशन, हैल्थ ऐंड लैंड्स' (Education, Health and Lands) विभाग। यह शिक्षा, प्रवास (विदेश गमन), स्थानीय स्वराज्य और स्वास्थ तथा चिकित्सा आदि विषयों का निरीक्षण करता है।

६—रेल और वाणिज्य अर्थात् 'रेलवेज़ ऐंड कामर्स (Railways and Commerce) विभाग। यह विभाग सरकार की वाणिज्य और व्यापार सम्बन्धी नीति का विचार करता है, आयात-निर्यात सम्बन्धी नियम कैसे होने चाहिये, जहाज़ों के आने-जाने की व्यवस्था कैसी रहनी चाहिये, इन विषयों का निर्णय यही विभाग करता है। रेलवे बोर्ड द्वारा यह विभाग भारत सरकार की रेलों के प्रबन्ध का नियंत्रण करता है। यह रेलों का वार्षिक आय-व्यय अनुमान पत्र भी बनाता है।

७-विदेश और राजनैतिक अर्थात् फोरेन ऐंड पोलिटिकल (Foreign and Political) विभाग। यह भारत सरकार के उस व्यवहार से सम्बन्ध रखता है, जो उसका यहाँ के देशी राज्यों से, तथा भारतवर्ष के बाहर, अन्य देशों से होता है। देशी रियासतों में इस विभाग की ओर से रेजीडैंट और पोलिटिकल एजन्ट आदि काम करते हैं। यह विभाग ब्रिटिश बिलोचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग के शासन का भी नियंत्रण करता है। राजनैतिक क़ैद, तथा पैन्शन और

उपाधियों का प्रदान करना, विदेशी वाणिज्य दूतों का स्वागत करना, शाही फ़ौज तथा राजकुमार कालिज का प्रबन्ध आदि कार्य इस विभाग के अन्तर्गत हैं।

८—सेना या 'आर्मी' (Army) विभाग। यह जल तथा स्थल और वायुयान सेना आदि सम्बन्धी कार्य, और फ़ौजी सामान का प्रबन्ध करता है। फ़ौजी स्वयं सेवक (वालंटियर) बनाने आदि के प्रश्नों की मीमांसा भी यही विभाग करता है।

उपर्युक्त विभागों में से प्रथम छः में से प्रत्येक के लिए गवर्नर-जनरल की प्रन्बधकारिणी सभा का एक एक सदस्य रहता है यथा अर्थ सदस्य (फाइनैंस मेम्बर), स्वदेश सदस्य (होम मेम्बर) आदि। विदेश विभाग गवर्नर-जनरल के अधीन है, और सेना विभाग पर जंगी लाट अर्थात् कमांडरन-चीफ़ का प्रभुत्व है, जो प्रबन्धकारिणी सभा का असाधारण सदस्य होता है।

सेक्रेटरी तथा अन्य पदाधिकारी—प्रबन्धकारिणी सभा के प्रत्येक सदस्य को सहायता देने के लिए उपर्युक्त प्रत्येक विभाग में एक सेक्रेटरी (Secretary), एक डिप्टी सेक्रेटरी, कई ऐसिस्टैंट सेक्रेटरी तथा कुछ क्लर्क आदि रहते हैं। ये प्रायः भारतीय सिविल सर्विस के होते हैं, परन्तु गवर्नर-जनरल चाहे तो कुछ सेक्रेटरियों को भारतीय व्यवस्थापक सभा के निर्वाचित अथवा नामज़द, सरकारी या ग़ैर-सरकारी सदस्यों में से नियुक्त कर सकता है। ऐसे सेक्रेटरियों को कौंसिल-सेक्रेटरी कहते हैं। इनका पद उस समय तक बना रहता है, जब तक गवर्नर-जनरल चाहता है। इनका वेतन भारतीय व्यवस्थापक सभा निश्चय करती है। अगर कोई कौंसिल-सेक्रेटरी छः महीने तक

उक्त सभा का सदस्य न रहे तो वह अपने पद से पृथक् हो जाता है। प्रत्येक सेक्रेटरी अपने विभाग के दफ्तर का संभालता है, और सभा की बैठक में उपस्थित रहता है।

सब सेक्रेटरियों का एक विशाल कार्यालय ('सेक्रेटेरियट') भारतवर्ष की राजधानी देहली में है; परन्तु भारत सरकार का सदर मुकाम (हैडक्वार्टर) सर्दी में देहली रहने के अतिरिक्त, गर्मियों में शिमला रहता है। इसलिये सेक्रेटरियों को आवश्यकतानुसार देहली या शिमले में रहना होता है।

भारत सरकार के अधीन डायरेक्टर-जनरल और इन्सपेक्टर-जनरल आदि कुछ और भी अधिकारी होते हैं, जिनका काम यह है कि भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों के विविध विभागों के कार्य की निगरानी रखें और उन्हें यथोचित परामर्श दें।

प्रबन्धकारिणी सभा के अधिवेशन—इस सभा का अधिवेशन प्रायः प्रति सप्ताह होता है। उसमें उन विषयों पर विचार होता है जिन पर गवर्नर-जनरल विचार करवाना चाहे, अथवा जिन्हें वह अस्वीकार करे और जिन पर कोई सदस्य सभा का निर्णय चाहे। अधिवेशन में सभापति स्वयं गवर्नर-जनरल अथवा उनका नियत किया हुआ कोई सदस्य होता है।

काम करने का ढंग—पहले शासन सम्बन्धी छोटा बड़ा प्रत्येक विषय कौंसिल (प्रबंधकारिणी सभा) के सामने उपस्थित किया जाता था। इससे कार्य सम्पादन में बहुत देर लगती थी, तथा बड़ी असुविधा होती थी। अब प्रत्येक सदस्य अपने

विभाग सम्बन्धी साधारण विषयों का स्वयं ही निपटारा कर देता है।

जब किसी विभाग सम्बन्धी कोई विचारणीय प्रश्न उठता है, तो उसका सेक्रेटरी मसविदा तैयार करके गवर्नर-जनरल या उस सदस्य के सामने पेश करता है जिसके अधीन उक्त विभाग हो। साधारणतया सदस्य इस पर जो निर्णय करता है वही अन्तिम फ़ैसला समझा जाता है, परन्तु यदि प्रश्न विवादग्रस्त हो या उसमें सरकारी नीति की बात आती हो तो सेक्रेटरी द्वारा तैय्यार किया हुआ मसविदा सभा में पेश होता है, और यहाँ से जो हुक्म हो उसे सेक्रेटरी प्रकाशित करता है। सभा के साधारण अधिवेशनों में, मत-भेद वाले प्रश्नों के विषय में, बहुमत से काम करना पड़ता है। यदि दोनों पक्ष समान हों तो जिस तरफ़ गवर्नर-जनरल (सभापति) मत प्रकट करे, उसी पक्ष के हक़ में फ़ैसला होता है। मगर गवर्नर-जनरल को इस बात का अधिकार रहता है कि यदि उसकी समझ में सभा का निर्णय देश के लिए हितकर न हो तो सभा के बहुमत की भी उपेक्षा कर, वह अपनी सम्मति के अनुकूल कार्य कर सकता है। परन्तु ऐसी प्रत्येक दशा में विरुद्ध पक्ष के दो सदस्यों की इच्छा होने पर उसे अपने कार्य की, कारण सहित सूचना देनी होगी, तथा सभा के सदस्यों ने उस विषय में जो कार्रवाई लिखी हो, उसकी कापी भारतमन्त्री के पास भेजनी होगी।

भारत सरकार के अधिकार—भारत सरकार को, नियमों का पालन करते हुए, ब्रिटिश भारत के शासन तथा सेना-प्रबन्ध के निरीक्षण तथा नियंत्रण का अधिकार है। वह कौंसिल-युक्त भारत मंत्री के नाम से ब्रिटिश भारत की किसी सम्पत्ति

को बेच सकती है। वह प्रबन्धकारिणी सभा के अधिवेशन का स्थान निश्चय करती है। प्रान्तीय सरकारों को उसकी आज्ञाएँ माननी होती हैं। वह प्रान्तों की सीमा नियत या परिवर्तन कर सकती है। प्रान्तिक सरकारों के निवेदन पर वह ब्रिटिश भारत के किसी हिस्से की शान्ति और सुशासन के लिए नियम बना सकती है। वह हाईकोर्टों का अधिकार क्षेत्र बदल सकती है और दो साल तक के लिए जज नियत कर सकती है। जिन बातों के लिए क़ानून में व्यवस्था न की हुई हो, उनके लिए वह भारत-मंत्री की स्वीकृति लेकर नियम बना सकती है। वह एशिया के राज्यों से सन्धि या समझौता कर सकती है, विदेशी राज्यों के अन्तर्गत वह अपनी सत्ता और अधिकारों का उपयोग कर सकती है। उसे अपने अधीन भू-भाग किसी राज्य को देने और उसके अधीन भू-भाग लेने का अधिकार है। (भारतीय व्यवस्थापक सभा, प्रान्तीय सरकारों और, प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सम्बन्ध में उसके जो अधिकार हैं, उनका विवेचन अन्यत्र प्रसंगानुसार किया जायगा।) सारांश यह है कि सम्राट् की प्रतिनिधि होने के कारण, उसे सम्राट् की ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त हैं जो भारतीय प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध न हों।

भारत सरकार का प्रान्तीय सरकारों से सम्बन्ध—प्रान्तीय सरकारों का कर्त्तव्य है कि वे भारत सरकार के आदेशों पर ध्यान दें, तथा उनके अनुसार कार्य करें। साथ ही उन्हें भारत सरकार को उन विषयों की सूचना देनी होती है, जिन की वह चाहे। पहले भारत सरकार, भारत मंत्री की अनुमति से प्रान्तीय सरकारों को कुछ विषयों के कार्य तथा अधिकार दे

दिया करती थी, और प्रान्तीय सरकारें उनके सम्बन्ध में, भारत सरकार के एजन्ट या प्रतिनिधि स्वरूप कार्य करती थीं। सन् १९१९ ई० के क़ानून के अनुसार निश्चय हुआ कि भारत सरकार यथा-सम्भव प्रान्तीय शासन कार्य में हस्तक्षेप न करे, और इस कार्य के लिये प्रान्तीय सरकारों को ही आवश्यक अधिकार दे दे। प्रान्तों के हस्तान्तरित विषयों में, भारत सरकार अपने हस्तक्षेप या नियंत्रण अधिकार का उपयोग केवल इसी उद्देश्य से करे, कि केन्द्रीय विषयों सम्बन्धी कार्य का सम्यग् सम्पादन हो सके, अथवा उस समय करे जब किसी विषय का सम्बन्ध दो या अधिक प्रान्तों से हो, और वे प्रान्त आपस में कोई समझौता न कर सकें।

इस समय शासन सम्बन्धी विषयों के दो भाग हैं—(१) अखिल भारतवर्षीय या केन्द्रीय विषय, और (२) प्रान्तीय विषय। इसी वर्गीकरण के आधार पर भारत सरकार (केन्द्रीय सरकार) और प्रान्तीय सरकारों के कार्यों, तथा उनकी आय के स्रोतों का विभाजन किया गया है। केन्द्रीय विषयों का उत्तरदायित्व भारत सरकार पर है (प्रान्तीय विषयों में भी उसे कुछ अधिकार है); यदि किसी विषय के सम्बन्ध में यह सन्देह हो कि यह प्रान्तीय है या केन्द्रीय, तो इसका निपटारा कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल करता है, परन्तु इस विषय में अन्तिम अधिकार भारतमन्त्री को है।

मुख्य मुख्य केन्द्रीय विषय—संक्षेप में, भारतवर्ष में मुख्य मुख्य केन्द्रीय विषय यह हैं:—

(१) देश रक्षा; भारतीय सेना तथा हवाई जहाज़, (२) विदेशों तथा विदेशियों से सम्बन्ध (३) देशी रियासतों से

सम्बन्ध । (४) राजनैतिक ख़र्च, (५) बड़े बन्दरगाह, । (६) डाक, तार, टेलीफ़ोन और बेतार के तार, (७) आयात-निर्यात-कर, नमक, और अखिल भारतवर्षीय आय के अन्य साधन, (८) सिक्का, नोट आदि, (९) भारतवर्ष का सरकारी ऋण, (१०) सेविंग बैंक, (११) भारतीय हिसाब परीक्षण विभाग, (१२) दीवानी और फ़ौजदारी क़ानून तथा उनके कार्य विधान, (१३) व्यापार, बैंक और बीमे का काम, (१४) तिजारती कम्पनियाँ और समितियाँ, (१५) अफ़ीम आदि पदार्थों की पैदावार, खपत और निर्यात का नियंत्रण, (१६) कापी-राइट (किताब आदि छापने का पूर्ण अधिकार) (१७) ब्रिटिश भारत में आना, अथवा यहाँ से विदेश जाना, (१८) केन्द्रीय पुलिस का संगठन, (१९) हथियार और युद्ध-सामग्री का नियंत्रण, (२०) मनुष्य गणना, और आँकड़े या स्टेटिसटिक्स (Statistics), (२१) अखिल भारतवर्षीय नौकरियाँ, (२२) प्रान्तों की सीमा, और (२३) मजदूरों सम्बन्धी नियंत्रण ।

भारत सरकार का उत्तरदायित्व—भारत सरकार अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी है, भारतीय जनता के प्रति नहीं । अगर गवर्नर-जनरल या उसकी प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य इंगलैंड की सरकार से किसी बात में सहमत न हों तो या तो उन्हें (१) अपने मत को दबाना पड़ेगा, अथवा (२) त्याग-पत्र देना होगा । पहली हालत में वे ब्रिटिश सरकार के अधीन कर्मचारी मात्र हैं, दूसरी दशा में उन्हें कोई क़ानूनी अधिकार प्राप्त नहीं कि वे जनता के प्रति अपने मत की सत्यता प्रकट कर सकें । अगर वे भारतीय जनता से निर्वाचित, तथा उसके प्रति उत्तरदायी हों तो जब

कभी ब्रिटिश सरकार उनके प्रस्ताव को रद्द करे, वे त्याग-पत्र देकर अपने निर्वाचक संघों से अपील कर सकते हैं, और अगर उन्हें उनका सहारा मिले तो ब्रिटिश सरकार उनके प्रस्तावों को स्वीकार करने पर बाध्य हो। भारत सरकार के सदस्य वर्तमान अवस्था में त्याग-पत्र दे सकते हैं, परन्तु इससे स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि उनके उत्तराधिकारी अपने उच्च अधिकारियों के आज्ञानुसार चलने के लिए बाध्य रहते हैं।

सन १९३५ ई० का विधान और भारत सरकार–

सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार भारतवर्ष में भावी शासन का लक्ष्य संघ शासन की स्थापना है, जिससे ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों का एक संघ बनकर दोनों का एक साथ शासन हो। संघ स्थापित होने पर भारत सरकार का नाम 'भारतवर्ष की संघ सरकार' होगा। संघ स्थापना की घोषणा सम्राट् द्वारा की जायगी, और उस समय की जायगी, जब कि निर्धारित शर्तनामे के अनुसार इतने देशी राज्य संघ शासन को स्वीकार कर लें, जितने, राज्य-परिषद् (कौंसिल-आफ-स्टेट) के कम से कम ५२ सदस्य चुनने के अधिकारी हों, और जिनकी जनसख्या, कुल देशी राज्यों की जन-संख्या की कम से कम आधी हो। सम्भवतः संघ स्थापना सन् १९४० ई० तक होगी।

संघ निर्माण होने के बाद सम्राट् का प्रतिनिधि, ब्रिटिश भारत के शासन सम्बन्धी विषयों में गवर्नर-जनरल, और देशी राज्यों के शासन प्रबन्ध में वायसराय होगा। दोनों पदों पर नियुक्तियाँ सम्राट् द्वारा हुआ करेंगी, और सम्राट् को दोनों पदों के लिये एक ही व्यक्ति नियुक्त करने का भी अधिकार होगा।

इस समय जो शासन कार्य कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के नाम से होता है, वह फिर गवर्नर-जनरल के ही नाम से होगा। उसका एक मंत्री-

मंडल (कौंसिल-आफ-मिनिस्टर्स) होगा। यह मंडल उसे, उसके विशेषाधिकारों को छोड़ कर अन्य विषयों में सहायता या परामर्श देगा। इसमें अधिक से अधिक दस मंत्री होंगे।

देश रक्षा अर्थात् सेना, धर्म (ईसाई मत), पर-राष्ट्र, तथा जंगली जातियों के विषय के प्रबंध में गवर्नर-जनरल अपनी मर्जी के अनुसार कार्य करेगा। इनमें मंत्रियों का परामर्श नहीं लिया जायगा। इनके सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल को सहायता देने के लिये अधिक से अधिक तीन सलाहकार (कौंसिलर) रहेंगे।

निम्नलिखित विषयों के लिये गवर्नर-जनरल विशेष रूप से उत्तरदायी होगा, इनके सम्बन्ध में वह (मंत्रियों की सलाह के विरुद्ध भी) अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकेगा :—

(१) भारतवर्ष या इसके किसी भाग के शान्ति-भंग का निवारण करना।

(२) संघ सरकार की आर्थिक स्थिरता और साख को सुरक्षित रखना। गवर्नर-जनरल को इस कार्य में सहायता देने के लिये एक आर्थिक परामर्शदाता (फाइनेन्शल ऐडवाइजर) होगा।

(३) ऐसे कार्य को रोकना, जिससे इंगलैंड या बर्मा से भारत में आने वाले माल के सम्बन्ध में भेद-नीति का व्यवहार हो।

(४) अल्प-संख्यकों के उचित हितों की रक्षा करना।

(५) वर्तमान तथा भूत-पूर्व सरकारी कर्मचारियों, और उनके आश्रितों के अधिकारों और हितों की रक्षा करना।

(६) संघीय क़ानूनों के सम्बन्ध में इस बात की व्यवस्था करना कि व्यापारिक और जाति-गत विषयों के भेद-भाव या पक्षपात मूलक क़ानून न बनें।

(७) देशी राज्यों के अधिकारों की, तथा उनके नरेशों के अधिकारों और मान मर्यादा की रक्षा करना।

(८) अपनी मर्जी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार किये जाने वाले कार्यों में कोई बाधा उपस्थित न होने देना।

ऐडवोकेट-जनरल संघ सरकार को आवश्यक कानूनी विषयों में परामर्श देगा, और वह ब्रिटिश भारत के तथा संघ में सम्मिलित देशी राज्यों के न्यायालयों में पैरवी कर सकेगा।

सन् १९३५ ई० के कानून से प्रान्तीय सरकारों पर भारत सरकार का नियंत्रण बहुत ही कम और विशेष दशाओं में होगा, साधारणतया वे अपने अपने क्षेत्र में बहुत कुछ स्वाधीन होंगी। गवर्नर अपने विशेषाधिकार के अनुसार किये हुए कार्यों के सम्बन्ध में भारतमंत्री के अधीन और उसके प्रति उत्तरदायी होंगे, हाँ भारतमंत्री का यह नियंत्रण गवर्नर-जनरल द्वारा होगा।

पाँचवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय सरकार

—: * :—

ब्रिटिश भारत के प्रान्त—आरम्भ में यह कल्पना करना कठिन था कि भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य इतना विस्तृत हो जायगा। पहले तीन 'प्रेसिडेन्सी' बनीं। आज कल 'प्रेसीडेन्सी' कहने से बंगाल, बम्बई और मद्रास के महान प्रान्तों का बोध होता है, किन्तु पहले 'प्रेसीडेन्सी' उस स्थान को कहते थे, जहाँ कम्पनी की किसी कोठी का प्रबन्ध करने वाला 'प्रेसीडैंट' अर्थात् सभापति (गवर्नर) और उसकी कौंसिल रहती थी। पश्चात् यह शब्द उस समस्त भूमि के लिये व्यवहार में आने लगा, जिस पर प्रेसीडैन्ट का अधिकार हो। धीरे धीरे

कम्पनी के अधिकार में अधिक भूमि आती गई, और वह इसे अपने सुभीते के अनुसार उपर्युक्त तीन प्रेसिडेन्सियों में से किसी में शामिल करती गई। जब इनकी सीमा बहुत बढ़ गई, और शासन की दृष्टि से असुविधा प्रतीत होने लगी, तो क्रमशः नवीन प्रान्तों की सृष्टि करनी पड़ी।

सन् १६१६ ई० के क़ानून के अनुसार यहाँ प्रान्तों की संख्या १५ है। इनकी शासन प्रणाली समझने के लिए इनका प्रारम्भिक इतिहास जान लेना उपयोगी है, अतः उसे नीचे संक्षेप में दिया जाता है।

१ मद्रास—सन् १६३६ ई० में इस प्रान्त की वह भूमि खरीदी गई, जहाँ अब सेंट-जार्ज का किला है। सन् १६५३ ई० में यह प्रेसीडेन्सी बना दिया गया। सौ वर्ष अंगरेजों के पास रहने के पश्चात् यह फ़्रांसीसियों द्वारा जीत लिया गया, किन्तु सन् १७५७ ई० में यह पुनः अंगरेजों के हाथ आ गया, और इसके साथ मछलीपट्टन भी आया। बक्सर के युद्ध के बाद, इलाहाबाद की संधि से मुग़ल सम्राट् शाह आलम द्वितीय द्वारा कम्पनी को 'उत्तरी सरकार' मिल गया। पश्चात् अंग्रेजों के हैदरअली और उसके बेटे टीपू सुलतान से चार युद्ध हुए। अन्त में सन् १७६६ ई० में मैसूर की राजगद्दी वहाँ के पुराने हिन्दू राज वंश को दी गई। इससे मद्रास प्रान्त में पाँच जिले और बढ़े। हैदराबाद के निज़ाम से भी दो ज़िले मिले और कर्नूल मिल जाने पर मद्रास प्रान्त पूरा हो गया। सन् १८६२ ई० में मद्रास सरकार ने उत्तरी कनारा का उत्तरी ज़िला बम्बई सरकार को दे दिया। इस प्रकार मद्रास, व्यापारियों की बस्ती से, फ़्रांस वालों की लड़ाई से, तथा बादशाह के दान,

और मैसूर के सुलतान की हार से ब्रिटिश भारत का एक प्रान्त बना है।

२ बम्बई—सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगीजों ने बम्बई का टापू गुजरात के बादशाह से लिया था, परन्तु सन् १६६१ ई० में पुर्तगाल के बादशाह ने इसे अपनी बेटी के दहेज में इंगलैन्ड-नरेश को दे दिया और उससे यह भारतवर्ष के अङ्गरेज व्यापारियों ने कुछ सालाना लगान पर ले लिया। तदुपरांत यहाँ क़िला और बंदरगाह बनाया गया। पश्चात् जब पेशवा नारायण राव की मृत्यु पर स्वार्थी राघोबा ने अपने ही बन्धुओं के विरुद्ध अंगरेजों की सहायता माँगी तो सालबाई की संधि (१७८२ ई०) से बसीन, सलसट तथा बम्बई के निकटवर्ती टापू कम्पनी को मिल गए। १८०० और १८१७ के बीच में सूरत के नवाब और गायकवाड़ से सूरत, भड़ोंच, अहमदाबाद और कैरा जिले अंगरेजों को मिले। मरहटों की संघ शक्ति क्रमशः टूटती गई। सन १८१८ ई० में किरकी की लड़ाई के बाद मध्यप्रदेश के कुछ ज़िलों के अतिरिक्त महाराष्ट्र का बड़ा भाग कम्पनी को प्राप्त हुआ। १८१६-२७ के बीच निजाम और कोल्हापुर के महाराज से अवशिष्ट महाराष्ट्र मिल गया। मध्यप्रदेश के जिलों को छोड़ कर, ये सब भू-भाग तथा सन् १८४२ ई० में बिलोची अमीरों से जीते हुए सिंध प्रदेश और अदन बंदर मिल कर बम्बई प्रान्त की सृष्टि हुई।

३ बंगाल—यहाँ अंगरेजों की पहली दुकान सन १६४२ ई० में बलासोर (बालेश्वर) में खोली गई थी। सन् १७०० ई० में कम्पनी ने बंगाल के हाकिम की आज्ञा से कलकत्ता मोल लिया। सन् १७५७ में पलासी की लड़ाई से और पश्चात् सन्

१७६५ ई० में बक्सर के युद्ध से कम्पनी को बङ्गाल बिहार-उड़ीसा की दीवानी मिल गयी। सन् १७७४ ई० में यहाँ का गवर्नर भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल बनाया गया, और वह मद्रास तथा बम्बई के गवर्नरों से ऊपर समझा जाने लगा। पश्चात् पश्चिमोत्तर प्रदेश इसी के अधिकार में कर दिया गया और यह सन् १८३४ ई० तक बंगाल में सम्मिलित रहा। सन् १८२६ ई० में आसाम और १८५० में शिकम की भूमि भी इसी में मिला दी गयी। सन् १८५४ ई० में बंगाल के लिए भारत-वर्ष के गवर्नर-जनरल से पृथक् एक गवर्नर की स्वीकृति हुई, परन्तु उस अहाते को केवल लेफ़्टिनेंट-गवर्नर से ही संतोष करना पड़ा। सन् १८७४ ई० में आसाम अलग एक चीफ़ कमिश्नर के अधीन कर दिया गया। सन् १९०५ ई० में बंगाल के 'शासन का भार कम करने के लिए' इसके कुछ ज़िले आसाम में मिला कर पूर्वी बंगाल और आसाम' नामक प्रान्त बनाया गया और उसके लिए लेफ़्टिनेंट गवर्नर नियत किया गया। परन्तु इस प्रकार के वंगविच्छेद से केवल बंगाली ही नहीं, वरन् समस्त हिन्दुस्तानी जनता में बिकट असंतोष की लहर उठी। इस पर सन् १९१२ में भारत-सम्राट् पंचम जार्ज ने दिल्ली दरबार के पश्चात् संपूर्ण बंगाल को एक गवर्नर के अधीन कर दिया। बिहार-उड़ीसा और छोटा नागपुर के लिए लेफ़्टिनेंट गवर्नर नियत हुआ और आसाम को, सन् १९०५ ई० के पूर्व की स्थिति के अनुसार, पुनः चीफ़ कमिश्नर ही मिला।

इस प्रकार जो भूमि सन् १८५४ से १८७३ ई० तक एक शासक के अधीन रही, और जहाँ १८७४ से १९११ तक दो

शासक रहे वहाँ १९१२ से तीन शासक अर्थात् एक गवर्नर, एक लेफ़्टिनेंट गवर्नर, और एक चीफ़ कमिश्नर नियत हैं।

४ बिहार-उड़ीसा—इसका उल्लेख अभी बंगाल के विषय में हो चुका है। इस नवीन प्रान्त की सृष्टि सन् १९१२ ई० से हुई, जब इसे एक लेफ़्टिनेंट गवर्नर के अधीन किया गया।

५ संयुक्त प्रान्त—अंगरेजों ने बक्सर की लड़ाई (सन् १७६४ ई०) से इलाहाबाद, बनारस और कड़ा प्राप्त किया, पश्चात् उन्होंने सन् १८०३ ई० के मरहट्टा युद्ध में सिंधिया को असाई तथा लासवारी पर परास्त किया, और आगरा एवं दुआब पर अधिकार प्राप्त किया। यह आगरा प्रान्त आरम्भ में बंगाल प्रान्त का ही भाग समझा गया था। सन् १८११ ई० में नागपुर के राजा से सागर व नर्मदा प्रदेश मिला और पाँच वर्ष पीछे गुर्खा युद्ध के परिणाम स्वरूप कमांऊ, गढ़वाल और देहरादून कम्पनी के हाथ आए। सन् १८३४ ई० में इस समस्त प्रदेश के लिए प्रबन्ध-कारिणी कौंसिल सहित एक गवर्नर की स्वीकृति हुई, परन्तु इसे लेफ़्टिनेंट-गवर्नर के अधीन किया गया।

लार्ड डलहौजी ने १८५६ ई० में अवध को भी अंगरेज़ी राज्य में मिलाया और यहाँ एक चीफ़ कमिश्नर नियत किया। सन् १८७७ ई० में यह पूर्वोक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में मिला दिया गया। इस प्रकार बढ़े हुए प्रान्त पर भी शासक केवल लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर ही रहा।

सन् १९०१ में पंजाब के उत्तर-पश्चिम में सीमा-प्रान्त बना देने पर उक्त पश्चिमोत्तर प्रदेश का नाम 'आगरा और अवध के संयुक्तप्रान्त' में परिवर्तित किया गया। केवल 'संयुक्त प्रान्त' कहने से भी इसी का बोध होता है।

६ **पंजाब**—सन् १८४६ ई० में, पहिले सिक्ख युद्ध के पश्चात्, पंजाब में नाबालिग राजा के लिए सरकारी एजेन्ट नियत हुआ। फिर सन् १८४६ ई० में दूसरे सिक्ख युद्ध की समाप्ति पर इस प्रांत में अंगरेजों का अधिकार हो गया और यहाँ के शासन के लिये तीन मेम्बरों का एक बोर्ड नियत किया गया। सन् १८५३ में यहाँ चीफ़ कमिश्नर मुकर्रर हुआ। राज्य क्रान्ति के बाद दिल्ली पश्चिमोत्तर प्रदेश से निकाल कर पंजाब में मिला ली गई और पीछे सन् १८५६ ई० में यहाँ लेफ्टिनेन्ट गवर्नर नियत हुआ। सन् १६१२ ई० से दिल्ली का एक स्वतंत्र प्रान्त बनाया गया।

७ **बर्मा**—सन् १८२६ ई० के प्रथम बर्मा युद्ध से अराकान तनासरम् और टेवा कम्पनी को मिले, और इन पर एक कमिश्नर नियत हुआ। दूसरे युद्ध के पश्चात् १८५६ ई० में पीगू पर अधिकार प्राप्त हुआ और यहाँ भी एक कमिश्नर नियत हुआ। अनन्तर सन् १८६२ ई० में इस समस्त प्रदेश पर दो कमिश्नरों के स्थान में एक चीफ़ कमिश्नर नियत किया गया। सन् १८८५ में उत्तर बर्मा अंगरेजी राज्य में मिलाया गया। तब से उत्तर-दक्षिण बर्मा मिला कर संपूर्ण बर्मा एक छोटे लाट (लेफ्टिनेन्ट गवर्नर) के अधीन रखा गया।

८ **आसाम**—इसका उल्लेख बंगाल प्रान्त के विषय में आ चुका है। प्रथम बर्मा युद्ध से यह अंग्रेजों के हाथ आया, तब से सन् १८७४ ई० तक यह बंगाल सरकार के ही अधीन रहा। पश्चात् यहाँ एक चीफ़ कमिश्नर नियत हुआ। यह प्रान्त सन् १६०५ ई० से १६१२ ई० तक पूर्वी बंगाल के साथ लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन रहा। पश्चात् यहाँ पुनः चीफ़ कमिश्नरी स्थापित हुई।

९ मध्य प्रान्त बरार–पश्चिमोत्तर प्रदेश से सागर और नर्मदा के ज़िले लेकर तथा उनमें नागपुर (जो सन् १८५४ ई० में राजा के मर जाने से अंगरेजी राज्य में मिला लिया गया था) मिला कर सन् १८६१ में चीफ़ कमिश्नर की अधीनता में 'मध्य प्रान्त' नामक प्रान्त बनाया गया।

बरार सन् १८५३ ई० में निज़ाम हैदराबाद ने अंग्रेज़ों को इस निमित्त से दिया कि वहाँ की आमदनी से हैदराबाद की सरकारी सेना का खर्च चलाया जावे और जो आय शेष रहे वह निज़ाम को मिल जाया करे। इस पर बरार में हैदराबाद के एजेंट के अधीन एक कमिश्नर नियत किया गया। सन् १६०२ ई० से निज़ाम को मिलने वाली रक़म २६ लाख रुपये ठहरा दी गई। अब शासन के विचार से मध्य प्रांत और बरार सम्मिलित ही हैं।

१० अजमेर-मेरवाड़ा—अंतिम मरहठा युद्ध के पश्चात् सन् १८१८ ई० में सिंधिया से अंग्रेजों को अजमेर मिला और मेरवाड़ा लुटेरों से छीन लिया गया। गवर्नर-जनरल का, राजपूताने की रियासतों का एजेंट ही यहाँ का चीफ़ कमिश्नर होता है।

११ कुर्ग–सन् १८३४ ई० में लार्ड विलियम बेन्टिंग ने प्रजा की सम्मति से कुर्ग को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। मैसूर का रेजिडेंट चीफ़ कमिश्नर की हैसियत से इसका शासन करता है।

१२ अंदमान निकोबार–इन टापुओं का सुपरिंटेंडेंट एक चीफ़ कमिश्नर है जो पोर्ट ब्लेयर में रहता है। सन् १८१८

ई० से यह हिन्दुस्तान के देश-निकाले के अपराधियों के रहने की जगह है।

१३ ब्रिटिश-बिलोचिस्तान—कलात के ख़ान से सन् १८७६ ई० में क्वेटा खरीदा गया। इसमें निकटवर्त्ती भूमि मिला कर सन् १८८६ ई० में ब्रिटिश-बिलोचिस्तान नाम का छोटा सा प्रान्त बना दिया गया, और यहाँ एक चीफ़ कमिश्नर नियत किया गया।

१४ पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त—पंजाब के कुछ ज़िले लेकर और उनमें कुछ आस पास की भूमि मिला कर सन् १६०१ ई० में इस नाम का एक नवीन प्रान्त चीफ़ कमिश्नर के अधीन कर दिया गया, जिससे भारत सरकार पश्चिमी सीमा की भली प्रकार निगरानी कर सके।

१५ देहली—सन् १८५७ ई० की राज्य क्रान्ति के बाद देहली पश्चिमोत्तर प्रदेश से निकाल कर पंजाब सरकार के अधीन कर दी गई थी। सन् १६१२ ई० में राजधानी को कलकत्ते से बदल कर देहली लाना आवश्यक समझा गया। तब से इस ज़िले को तथा इस के आस पास की कुछ भूमि को पंजाब प्रान्त से जुदा करके और उस में मेरठ ज़िले का कुछ भाग मिला कर एक चीफ़-कमिश्नरी बना दी गई।

प्रान्तों का शासन—कम्पनी के राज्य काल के आरम्भ में बंगाल, बम्बई और मदरास के गवर्नर (सरकार) पृथक् पृथक्, एक दूसरे से स्वतंत्र थे। सन् १७७३ ई० के रेग्युलेटिंग ऐक्ट से मदरास और बम्बई की सरकार बंगाल के गवर्नर-जनरल के अधीन की गई, परन्तु उन पर विशेष नियंत्रण न

हुआ। वे प्रायः स्वतंत्र रूप से कार्य करती रहीं। सन् १७८४ ई० के पिट के क़ानून से, वे निश्चित रूप से बंगाल के गवर्नर-जनरल के अधीन हो गईं। पश्चात् १८५३ ई० से प्रत्येक प्रान्त की सरकार पर भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल अर्थात् भारत सरकार का निरीक्षण और नियंत्रण रहने लगा; अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बंगाल, मद्रास और बम्बई पर यह नियंत्रण कम रहा।

रेग्युलेशन और नान-रेग्युलेशन प्रान्त—पहले प्रान्त दो प्रकार के थे, रेग्युलेशन प्रान्त और नान-रेग्युलेशन प्रान्त। बम्बई, बंगा , मद्रास और आगरा के प्रान्त 'रेग्यूलेशन प्रान्त' कहलाते थे, और अवध, पंजाब, सिंध, मध्य प्रान्त आदि को 'नान-रेग्युलेशन प्रान्त' कहा जाता था। रेग्यूलेशन प्रान्तों का शासन सरकार द्वारा बनाए हुए रेग्युलेशनों अर्थात् नियमों या कानूनों के अनुसार, होता था। नान-रेग्युलेशन प्रान्तों में, उनकी भिन्न भिन्न दशा के अनुसार, नियम या क़ानूनों में आवश्यक हेर फेर कर लिया जाता था; यह विशेषतया इस लिये किया जाता था कि इन प्रान्तों को अंगरेज़ी राज्य में सम्मिलित हुए कम समय हुआ था, ये शासन की दृष्टि से कम उन्नत समझे जाते थे। प्रान्तों का यह भेद खास तौर से, सन् १९१९ ई० से हट गया है। हाँ, जो प्रान्त पहले रेग्युलेशन प्रान्त कहलाते थे, उनमें जिले के प्रधान अफसर को अब भी पूर्ववत 'कलेक्टर' ही कहते हैं; और नान-रेग्युलेशन प्रान्तों में उसे डिप्टी-कमिश्नर कहा जाता है।

सन १९१९ ई० के क़ानून से पहले प्रान्तों के भेद—सन् १९१९ ई० के क़ानून से पूर्व प्रान्तों के पाँच भेद थे, यह आगे के नक्शे से प्रकट हो जायगा :—

भेद	प्रान्त	शासक	शासन पद्धति
१	मद्रास, बम्बई और बंगाल	गवर्नर	प्रबन्धकारिणी सभा और व्यवस्थापक परिषद्
२	बिहार उड़ीसा	लेफ्टिनेंट गवर्नर	,,
३	संयुक्त प्रान्त, पंजाब, और बर्मा	,,	केवल व्यवस्थापक परिषद्
४	आसाम, और मध्य-प्रान्त बरार	चीफ कमिश्नर	,,
५	अजमेर, मेरवाड़ा, कुर्ग, अंडमान-निकोबार, ब्रिटिश बिलोचिस्तान, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, और देहली	,,	प्रबन्धकारिणी सभा या व्यवस्थापक परिषद्, कोई नहीं

सन् १९१९ ई० के क़ानून के अनुसार प्रान्तों के भेद—सन् १९१९ ई० के क़ानून से प्रान्तों की कुल संख्या तो पूर्ववत अर्थात् १५ ही रही, परन्तु उनके भेद केवल दो किए गए—बड़े (Major) प्रान्त और छोटे (Minor) प्रान्त। शासक भी

केवल दो प्रकार के रह गये, बड़े प्रान्तों में गवर्नर और छोटे प्रान्तों में चीफ कमिश्नर। इस प्रकार लेफ़्टिनैन्ट-गवर्नर का पद हटा दिया गया, जो उक्त दो पदों के बीच का था। सन् १९१९ ई० के क़ानून से बड़े प्रान्तों में बंगाल, बम्बई, मद्रास, संयुक्त प्रान्त पंजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्य प्रान्त बरार, बर्मा, और आसाम रखे गए हैं। इन्हीं नौ प्रान्तों में उत्तरदायी शासन पद्धति का श्रीगणेश करके, स्वराज्य का बीज बोया गया है। शेष छः प्रान्त छोटे प्रान्त कहलाते हैं। इनमें देहली, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त ब्रिटिश बिलोचिस्तान, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, और अन्दमान-निकोबार सम्मिलित है। बड़े प्रान्तों में गवर्नर, प्रबन्धकारिणी सभाएँ और व्यवस्थापक परिषदें हैं। छोटे प्रान्तों का शासन चीफ़ कमिश्नर करते हैं, जो गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त, और भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इन प्रान्तों के लिए क़ानून भारतीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा बनाए जाते हैं; हाँ, कुर्ग में व्यवस्थापक परिषद् है।

द्वैध शासन—बड़े प्रान्तों में सुधारों के अनुसार प्रान्तिक सरकारों से सम्बन्ध रखने वाले विषय दो भागों में विभक्त हैं (१) रक्षित या 'रिज़र्वड' (Reserved), और (२) हस्तान्तरित या 'ट्रांसफ़र्ड' (Transferred)। रक्षित विषयों के प्रबन्ध करने का अधिकार गवर्नर और उसकी प्रबन्ध-कारिणी सभा को है। ये भारत सरकार और भारत मन्त्री द्वारा ब्रिटिश पार्लिमैंट के प्रति, और अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश मत दाताओं के प्रति उत्तरदाई हैं। हस्तान्तरित विषयों का प्रबन्ध गवर्नर अपने मन्त्रियों के परामर्श से करता है। ये प्रान्तिक व्यवस्थापक परिषद् के प्रति, अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय मत दाताओं के प्रति उत्तरदायी

हैं। इस प्रकार प्रान्तिक सरकार के दो भाग हैं। एक भाग में गवर्नर और उसकी प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य होते हैं। दूसरे भाग में गवर्नर और उसके मन्त्री होते हैं। [साधारणतया प्रान्तिक सरकार इकट्ठी ही किसी विषय का विचार करती है, तथापि यह गवर्नर की इच्छा पर निर्भर है कि वह किसी विषय का अपनी सरकार के केवल उस भाग से ही विचार करले, जो उसका प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है।] जिस पद्धति में शासन कार्य ऐसे दो भागों में विभक्त होता है, उसे द्वैध शासन पद्धति या 'डायर्की' (Diarchy) कहते हैं।

रक्षित विषय—भिन्न भिन्न प्रान्तों में कुछ अन्तर होते हुए भी, साधारणतया जो विषय रक्षित रखे गए हैं, उनमें से मुख्य निम्न लिखित हैं:—(१) आबपाशी और नहर, (२) ज़मीन की मालगुज़ारी (३) अकाल-निवारण, (४) सरकारी कार्यों के लिये ज़मीन हासिल करना, (५) न्याय विभाग, (६) अदालती तथा ग़ैर अदालती टिकट, (७) उन खनिज सम्पत्तियों की उन्नति जिन पर सरकार का अधिकार है, (८) औद्योगिक विषय, जिनमें कारखाने, मज़दूरी सम्बन्धी वाद विवाद, बिजली, 'बोयलर', गैस या धुएँ का कष्ट, और मज़दूरों की कुशल सम्मिलित है, (९) छोटे प्रान्तिक बन्दरगाह (१०) रेलवे पुलिस को छोड़ कर अन्य पुलिस, (११) समाचार पत्रों और छापेखानों का नियन्त्रण, (१२) जरायम-पेशा जातियाँ और आवारा घूमने वाले योरपियन, (१३) कैदख़ाने और सुधार-गृह, (१४) प्रान्तिक सरकारी छापाख़ाना, (१५) भारतीय तथा प्रान्तिक व्यवस्थापक संस्थाओं के लिए मत देने और निर्वाचित होने का विषय, (१६) डाक्टरी

तथा अन्य पेशों की योग्यता का निर्णय, (१७) अखिल भारतीय तथा अन्य सरकारी नौकरियाँ जो प्रान्त के अन्दर हों, (१८) नये प्रान्तिक कर (१९) रुपया उधार लेना, (२०) विविध, (अ) जूए सम्बन्धी नियम, (आ) पशुओं पर होने वाली निर्दयता रोकना, (इ) जङ्गली पशुओं की रक्षा, (ई) विषैले पदार्थों का नियंत्रण, (उ) मोटर सवारियों का नियन्त्रण, (ऊ) नाटक-गृह और सिनेमैटोग्राफ़ों का नियन्त्रण, (२१) ऐसे विषय जो कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल द्वारा, या किसी क़ानून से, प्रान्तिक सरकार के लिए निर्धारित कर दिए गए हों।

हस्तान्तरित विषय—निम्नलिखित विषय प्रायः हस्तान्तरित किए गए हैं:—(१) स्थानीय स्वराज्य, (२) चिकित्सा (३) सार्वजनिक स्वास्थ, (४) शिक्षा, [योरपियनों और एंग्लो-इंडियनों की शिक्षा छोड़ कर], (५) निर्माण कार्य [सड़कें और इमारतें] और ट्रामवे, (६) कृषी विभाग (७) सहकारी समितियाँ, (८) जंगल (९) आबकारी, (१०) दस्तावेज़ों की रजिस्टरी, (११) जन्म मृत्यु और विवाह का उल्लेख, (१२) धार्मिक और दान देने वाली संस्थाएँ, (१३) उद्योग और शिल्प शिक्षा, (१४) खाद्य तथा अन्य पदार्थों में मिलावट, (१५) तौल और माप, (१६) अजायबघर, चिड़ियाघर और पुस्तकालय, (१७) हस्तान्तरित विषयों के लिए आवश्यक स्टोर और स्टेशनरी, (१८) ब्रिटिश भारत की सीमा में यात्रा।

गवर्नर और उनके अधिकार—बड़े प्रान्तों के शासन कार्य में गवर्नरों का पद मुख्य है। उन्हीं पर प्रान्तिक शासन की शान्ति, सुव्यवस्था, तथा विविध प्रकार की उन्नति का उत्तरदायित्व है। इसके सम्बन्ध में उन्हें सम्राट् की ओर से कुछ

हिदायतें रहती हैं। सब गवर्नरों का वेतन और दर्जा बराबर नहीं है। बंगाल, बम्बई और मद्रास के गवर्नर ऊँचे माने जाते हैं। सब गवर्नरों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है, परन्तु उक्त तीन प्रान्तों के गवर्नर, इंगलैंड के राजनीतिज्ञों में से, भारत मन्त्री की शिफ़ारिस से नियत होते हैं। *अन्य गवर्नर प्रायः भारतीय सिविल सर्विस के सदस्यों में से, गवनर-जनरल के परामर्श से, नियत किये जाते हैं।

यदि किसी विषय के सम्बन्ध में यह सन्देह हो कि वह हस्तान्तरित है या नहीं, तो उसका निर्णय करने का अधिकार गवर्नर को है। ऐसे विषयों को, जिनका सम्बन्ध हस्तान्तरित और रक्षित दोनों प्रकार के विषयों से हो, गवर्नर कुछ दशाओं में प्रान्तिक सरकार के दोनों भागों के सन्मुख विचारार्थ उपस्थित करता है। जो विषय हस्तान्तरित किया जा चुका हो उसे कौंसिल-युक्त भारत मन्त्री की स्वीकृति बिना रक्षित नहीं बनाया जा सकता। अगर कौंसिल-युक्त भारत मन्त्री की आज्ञानुसार, किसी प्रान्त की प्रबन्धकारिणी सभा मन्सूख या मुल्तवी करदी जाय तो गवर्नर को कौंसिल-युक्त गवर्नर के सब अधिकार होते हैं। बंगाल, बम्बई, और मद्रास के गवर्नर भारत मन्त्री से सीधा पत्र व्यवहार कर सकते हैं, अन्य प्रान्तों के गवर्नरों को यह कार्य भारत सरकार द्वारा करना होता है। गवर्नर, भारत सरकार की आज्ञाओं के प्रतिकूल, भारत मन्त्री के यहाँ पुनः विचारार्थ दरख्वास्त दे

* अगर कभी गवर्नर-जनरल का पद ख़ाली हो, तो इनमें से जो सीनियर (अधिक समय से काम करने वाला) होता है, वह उसका कार्य सम्पादन कर सकता है।

सकते हैं, और अपनी इच्छानुसार अपने नीचे के कुछ बड़े बड़े ओहदों पर नियुक्तियां कर सकते हैं।

कुछ दशाओं में गवर्नर अपनी प्रबन्धकारिणी सभा के निर्णय के विरुद्ध काम कर सकता है। वह उसके सदस्यों में से एक को उसका उपसभापति नियत करता है और ऐसे नियम बना सकता है, तथा ऐसी आज्ञा दे सकता है, जिनसे प्रबन्धकारिणी सभा का संचालन सुविधा-पूर्वक हो, और उसका मंत्रियों से नियमित सम्बध बना रहे। गवर्नर को मंत्रियों के निर्णय के विरुद्ध भी कार्य करने का अधिकार है। यदि मंत्रियों और प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यों में इस विषय का मत भेद हो कि प्रान्तिक सरकार की आय में से, सरकार के किस भाग को, कार्य संचालन के लिए, कितनी रक़म मिले, तो इसका निश्चय गवर्नर ही करता है।

प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य, और मंत्री मंडल—गवर्नर अपने प्रान्त का शासन, प्रबन्धकारिणी सभा और मंत्री मंडल की सहायता से करता है। प्रबन्ध-कारिणी सभा के सदस्य सम्राट् द्वारा नियुक्त होते हैं। इनकी अधिक से अधिक चार तक, ऐसी संख्या होती है जो कौंसिल-युक्त भारत मंत्री नियत करे। इन सदस्यों में से कम से कम एक ऐसा होना चाहिये जिसे नियुक्ति के समय कम से कम बारह वर्ष का, सरकारी नौकरी का अनुभव हो। कुल सदस्यों में से आधे भारतीय होने चाहिये। बंगाल, बम्बई, और मदरास प्रान्तों की प्रबन्धकारिणी सभाओं में चार चार, और अन्य प्रान्तों में दो दो सदस्य हैं। सदस्य प्रायः पाँच पाँच वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। प्रान्तीय मंत्री मंडल में दो या अधिक मंत्री होते हैं। इन्हें गवर्नर अपने प्रान्त की व्यवस्थापक

परिषद् के निर्वाचित सदस्यों में से, जितने समय के लिए वह चाहे, नियुक्त करता है। ये सरकारी कर्मचारियों में से नहीं हो सकते। सुधार-क़ानून ने इनका पद और वेतन प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यों के समान ही रखा है, परन्तु उन्हें उत्तरदायी बनाने के लिए व्यवस्थापक परिषदों को उनका वेतन घटाने का अधिकार दिया है। ये गवर्नर को परामर्श देने वाले हैं, परन्तु गवर्नर इनके परामर्श के अनुसार ही कार्य करने को वाध्य नहीं है। मंत्रियों का कार्यकाल प्रायः तीन वर्ष होता है। किसी प्रान्त की व्यवस्थापक परिषद् का नया चुनाव होने के साथ ही उसकी सरकार के नये मंत्री भी बन जाते हैं।

सेक्रेटरी—प्रत्येक मंत्री, तथा प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य की सहायतार्थ प्रायः एक एक सेक्रेटरी, सरकारी अफसरों या प्रान्तिक व्यवस्थापक परिषद् के निर्वाचित सदस्यों में से, नियत किया जाता है। जो सेक्रेटरी व्यवस्थापक परिषद् के निर्वाचित सदस्यों में से नियत होते हैं, उन्हें कौंसिल-सेक्रेटरी कहते हैं। उनका वेतन व्यवस्थापक परिषद् के मत से निश्चय होता है, ये परिषद् के प्रति उत्तरदायी रहते हैं।

प्रान्तिक शासन में भारत सरकार और भारत मन्त्री का सम्बन्ध—प्रान्तिक सरकारों का मुख्य कार्य क्षेत्र प्रान्तीय विषय, रक्षित या हस्तान्तरित हैं। पर उन्हें अपने अपने प्रान्त में भारत सरकार के केन्द्रीय विषयों के सम्बन्ध में भी कुछ कर्तव्य पालन करना होता है, जैसे आय, कर वसूल करना आदि। प्रान्तिक सरकार, ये कार्य भारत सरकार के एजन्ट की तरह, और उसके सुभीते के लिए करती है। इस वास्ते भारत सरकार

जब चाहे, इन कामों का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर, उनका संचालन अपने कर्मचारियों द्वारा करा सकती है।

प्रान्तों के रक्षित और हस्तान्तरित विषयों में, भारत सरकार और भारत मंत्री को विविध अधिकार हैं। प्रान्तिक स्वराज्य का श्रीगणेश, हस्तान्तरित विषयों का उत्तरदायित्व मंत्रियों को देकर, किया गया है। इन विषयों में भारत सरकार का नियंत्रण कम कर दिया गया है। इस नियंत्रण का उद्देश्य केन्द्रीय विषयों की सुरक्षा, और ऐसे प्रश्नों का निपटारा करना है, जिनका सम्बन्ध दो या अधिक प्रान्तों से हो। ऋण लेने और भारतीय सिविल सर्विस के कर्मचारियों के अधिकार, और वेतन आदि के सम्बन्ध में भी भारत सरकार हस्तक्षेप कर सकती है। प्रान्तिक सरकारों को बहुत से पदों की सृष्टि, वेतन-वृद्धि आदि के लिए भारत मंत्री की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

सन् १०३५ ई० का शासन विधान और प्रान्तीय शासन—सन् १९३५ ई० के शासन विधान से बर्मा ब्रिटिश भारत से पृथक् कर दिया गया है। पहले बर्मा के अतिरिक्त आठ प्रान्तों में गवर्नर थे :—बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्त प्रान्त, पजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्य प्रान्त बरार, और आसाम। उक्त विधान से इनमें तीन प्रान्त और बढ़े हैं। सिन्ध को बम्बई से, और उड़ीसा को बिहार से पृथक् करके नया प्रान्त बनाया गया है। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त का शासक पहले चीफ कमिश्नर होता था। वह भी अब गवर्नर का प्रान्त बनाया गया है। इस प्रकार अब कुल मिला कर ग्यारह प्रान्तों में गवर्नर हैं।

चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों में यह अन्तर हुआ है कि सीमा प्रान्त जैसा कि ऊपर कहा गया है, अब गवर्नर का प्रान्त होगा। एक चीफ कमिश्नरी नयी बढ़ायी गई है :—पंथ पिथलोदा का क्षेत्र।

सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार प्रान्तों के शासन सम्बन्धी विषयों में सुरक्षित (रिजर्वड) और हस्तान्तरित (ट्रान्सफर्ड) का भेद न रहेगा। जिन विषयों के सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने का अधिकार होगा, उनका शासन मंत्री मंडल की सलाह से होगा। इन्हें छोड़ कर अन्य विषयों के लिए गवर्नरों पर विशेष उत्तरदायित्व रहेगा, उनके शासन-प्रबन्ध में गवर्नर अपनी मर्जी या व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य करेगा। ऐसे विषय निम्न लिखित हैं :—(१) अल्प-संख्यकों के उचित हितों की रक्षा, (२) वर्तमान तथा भूतपूर्व सरकारी कर्मचारियों के अधिकारों और हितों की रक्षा (३) व्यापारिक या जातिगत भेद भाव के क़ानून को रोकना (४) अंशतः पृथक् किये हुए क्षेत्रों का शासन, और (५) देशी राज्यों के अधिकारों की रक्षा। जैसा कि पिछले परिच्छेद के अन्त में लिखा जा चुका है, इन विशेषाधिकार के विषयों में गवर्नर भारत-मंत्री के अधीन, और उसके प्रति उत्तरदायी होंगे; हाँ, उन पर भारत-मंत्री का नियंत्रण गवर्नर-जनरल द्वारा होगा।

छठा परिच्छेद

भारतीय व्यवस्थापक मंडल

—:*:—

ब्रिटिश भारत में क़ानून बनाने वाली संस्थाएँ दो प्रकार की हैं :—(१) भारतीय या केन्द्रीय; जो ऐसे क़ानून बनाती है, जिनका सम्बन्ध किसी प्रान्त विशेष से न होकर समस्त ब्रिटिश भारत से, या उसके कई प्रान्तों से हो; इसे भारतीय व्यवस्थापक मंडल कहते हैं। (२) प्रान्तीय; जो किसी प्रान्त विशेष सम्बन्धी क़ानून बनाती हैं। इस परिच्छेद में भारतीय

व्यवस्थापक मंडल का परिचय दिया जायगा, इसे भारतीय धारा सभा भी कहते हैं। पहले इसका संक्षिप्त इतिहास जान लेना चाहिये।

जन्म—सन् १७७३ ई० के रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से पहले बंगाल, बम्बई, और मद्रास इन तीन प्रेसीडेंसियों के कौंसिल-युक्त गवर्नरों को अपने अपने क्षेत्र के लिए नियम और रेग्यूलेशन बनाने का अधिकार था। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट से बंगाल का गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल, तीनों प्रान्तीय सरकारों में प्रधान हो गई। परन्तु व्यवहार में उसका बम्बई और मद्रास पर नियंत्रण नाम-मात्र का ही रहा। वे अपने भिन्न भिन्न नियम बनाती रहीं। सन् १८३३ ई० में, समानता लाने के विचार से मद्रास और बम्बई की सरकारों का क़ानून बनाने का अधिकार हटा दिया गया और एक मात्र गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को ही अंगरेज़ी राज्य के सब भागों के लिए क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया। मेकाले गवर्नर-जनरल की कौंसिल का प्रथम सलाहकार नियुक्त हुआ। उसे केवल क़ानून बनाने के समय ही कौंसिल में बैठने और मत देने का अधिकार था। इस प्रकार तीन क़ानून बनाने वाली प्रबन्धक-संस्थाओं की जगह एक केन्द्रीय व्यवस्थापक परिषद् की स्थापना हुई; इसके बनाए हुए नियम 'रेग्यूलेशन' की जगह 'क़ानून' (ऐक्ट) कहे जाने लगे।

वृद्धि और विकास—इस व्यवस्थापक परिषद् के इतिहास में पहला परिवर्तन सन् १८५३ ई० में हुआ। इस समय से क़ानून-सदस्य, प्रबन्धकारिणी सभा के अन्य सदस्यों के समान अधिकार पाकर, इस में बैठने और सम्मति देने लगा, तथा

व्यवस्था कार्य के लिए छः अतिरिक्त सदस्य बढ़ाए गए :— सुप्रीम कोर्ट (कलकत्ता) का चीफ जस्टिस (प्रधान जज) तथा एक और जज, और चार प्रान्तों अर्थात् मद्रास, बम्बई, बंगाल, और पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकारों द्वारा नियत किया हुआ कम्पनी का एक एक कर्मचारी जिसने दस वर्ष भारतवर्ष में काम किया हो। यह परिषद् न केवल क़ानून बनाती थी, वरन् सरकारी कामों की आलोचना भी करती थी। इससे भारत सरकार को कभी कभी बहुत कठिनाई उपस्थित हुई।

यह बात १८६१ के इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट से दूर की गई। अब से परिषद् की सरकारी कामों की आलोचना बंद कर दी गई, और जजों को इस में बैठने का अधिकार न रहा। अब अतिरिक्त मेम्बरों की संख्या १२ तक हो सकती थी। गैर-सरकारी मेम्बर भी नियत होने लगे, और यह नियम हो गया कि इनकी संख्या आधी से कम न रहे; जिस स्थान में व्यवस्थापक परिषद् का अधिवेशन हो, वहाँ के प्रान्तिक शासक को इसके अतिरिक्त मेम्बर के अधिकार प्राप्त हो गए।

सन् १८९२ ई० के ऐक्ट से यह परिवर्तन हुआ कि अतिरिक्त मेम्बरों की संख्या १२ से बढ़ा कर १६ कर दी गयी। नियुक्ति का ढंग पहिले की भाँति अब भी यही रहा कि गवर्नर-जनरल मेम्बरों को नामज़द करे; परन्तु यह नियम हो गया कि कुछ मेम्बर विशेष निर्वाचक-समितियों की सिफारिश से नामज़द किये जायँ।

सन् १९०९ ई० का कौंसिल क़ानून—सन् १९०९ ई० के इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट (मार्ले-मिन्टो सुधार) तथा उसके अनुसार बनाए हुए, भारत सरकार के नियमों से भारतीय

व्यवस्थापक परिषद् के मेम्बरों की संख्या ६८ की गई, इनमें से ४१ तो सरकारी पदाधिकारी अथवा नामज़द होते थे, शेष २७ मेम्बर निर्वाचित होने लगे ; अधिकांश निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचकों द्वारा नहीं होता था, वरन् प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों और जाति विशेष या संस्था विशेष के निर्वाचक संघों द्वारा होता था। इस क़ानून से मुसलमान, जागीरदार, और ज़मींदार आदि विशेष दलों को अलग प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिला ; इससे जो साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रथा आरम्भ हुई, वह पीछे बहुत विद्वेष-वर्द्धक प्रमाणित हुई।

सन् १९१९ ई० के सुधार—सन् १९१९ ई० के क़ानून के अनुसार भारतीय व्यवस्थापक मण्डल अर्थात् 'इंडियन लेजिस्लेचर' (Indian Legislature) कोई एक सभा नहीं है। इसकी दो सभाएँ हैं :—(१) भारत व्यवस्थापक सभा या 'लेजिस्लेटिव एसेम्बली' (Legislative Assembly) और (२) राज्य परिषद् या कौंसिल आफ़ स्टेट (Council of State)। सिवाय कुछ ख़ास हालतों के कोई क़ानूनी मसविदा अब पास हुआ नहीं समझा जाता, जब तक दोनों सभाएँ उसे मूल रूप में, अथवा कुछ संशोधनों सहित, स्वीकार न कर लें। दोनों सभाएँ कुछ सदस्यों का स्थान ख़ाली रहने पर भी अपना कार्य कर सकती हैं। गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी सभा का हर एक सदस्य दोनों सभाओं में से किसी एक सभा का सदस्य नामज़द किया जाता है। इन सभाओं का संगठन जानने से पूर्व, मुख्य मुख्य निर्वाचन नियम जान लेना आवश्यक है।

निर्वाचक संघ—निर्वाचन के सुभीते के लिए प्रत्येक प्रान्त, ज़िला या नगर सरकार द्वारा कई भागों या क्षेत्रों में

विभक्त किया गया है, प्रत्येक क्षेत्र के निर्वाचक समूह को निर्वाचक संघ कहते हैं। प्रत्येक निर्वाचक संघ अपनी ओर से प्रायः एक एक (कहीं कहीं एक से अधिक) प्रतिनिधि चुनता है।

भारतवर्ष में दो प्रकार के निर्वाचक संघ हैं, साधारण और विशेष। साधारण निर्वाचक संघ, जाति-गत निर्वाचक संघों में विभाजित किये गये हैं, जैसे मुसलमानों का निर्वाचक संघ, ग़ैर-मुसलमानों का निर्वाचक संघ, इत्यादि। भारतीय व्यवस्थापक सभा (तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों) के लिए जाति गत निर्वाचक संघ, प्रायः नगरों और ग्रामों में विभक्त किए गए हैं, जैसे मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक संघ, ग़ैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक संघ इत्यादि। विशेष निर्वाचक संघों में ज़मींदार, विश्वविद्यालय, व्यापारी, खान, नील और खेती, तथा उद्योग और वाणिज्य वाले निर्वाचक होते हैं।

निर्वाचक—व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों को चुनने वालों (निर्वाचकों) तथा निर्वाचन विधि के सम्बन्ध में नियम बने हुए हैं।

निम्न लिखित व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते :—

१—जो ब्रिटिश प्रजा न हों।

२—जो अदालत से पागल ठहराए गए हों।

३—जो इक्कीस वर्ष से कम आयु के हों।

४—जिसे निर्धारित अपराधों में सज़ा दी गई हो।

किसी निर्वाचक क्षेत्र से निर्वाचक वे ही व्यक्ति हो सकते हैं, जो उस क्षेत्र की सीमा में रहते हों, तथा जिनमें निर्धारित

साम्पत्तिक अथवा अन्य योग्यता हो। साम्पत्तिक योग्यता का परिमाण भिन्न भिन्न प्रान्तों में पृथक् पृथक् है। राज्य परिषद् की अपेक्षा भारतीय व्यवस्थापक सभा के निर्वाचकों के लिए, तथा कहीं कहीं अन्य निर्वाचकों की अपेक्षा मुसलमान निर्वाचकों के लिए आर्थिक योग्यता कम निर्धारित की गई है। राज्य परिषद् के निर्वाचक तो प्रायः बड़े बड़े ज़मींदार और पूँजीपति ही हो सकते हैं। उदाहरणवत् मध्यप्रान्त में जो आदमी बीस हज़ार रुपये की आय पर आय कर देता हो, वह राज्य परिषद् के लिये, और भिन्न भिन्न ज़िलों में १८०) से २४०) तक वार्षिक मकान किराया या ६०) से १५०) मालगुज़ारी देने वाला व्यक्ति भारतीय व्यवस्थापक परिषद् के लिए निर्वाचक हो सकता है।

सदस्य—सदस्य वे ही व्यक्ति निर्वाचित अथवा नामज़द हो सकते हैं, जो निर्वाचक हों। उनकी उम्र २५ वर्ष से कम न होनी चाहिये, तथा वे सरकारी नौकर न होने चाहिये। कोई व्यक्ति भारतीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं में से किसी एक का ही सदस्य हो सकता है। सदस्य बनने के लिए खड़े होने वोले उम्मेदवार को ५००) जमानत के रूप में जमा करने होते हैं, यदि उसे अपने निर्वाचन क्षेत्र के कुल मतों में से आठवें हिस्से से कम मिले, तो यह जमानत जप्त हो जाती है।

भारतीय व्यवस्थापक सभा—इस सभा के कुल सदस्यों की संख्या १४३ है, जिनमें से ४० नामजद हैं। नामज़द सदस्यों में २६ से अधिक सरकारी नहीं हो सकते। कुल सदस्यों में कम से कम ५/७ निर्वाचित होने चाहिये, और नामज़द सदस्यों

में कम से कम एक-तिहाई गैर-सरकारी होने चाहिये। भिन्न भिन्न प्रान्तों के सदस्यों की संख्या भिन्न भिन्न है। मध्यप्रान्त में ३ गैर-मुसलिम, १ मुसलिम, और १ जमींदार निर्वाचित हैं, और १ सरकारी व्यक्ति नामजद है।

व्यवस्थापक सभा की आयु तीन वर्ष है, परन्तु गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह इसका समय आवश्यकतानुसार घटा बढ़ा सके।

भारतीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को एम. एल. ए. (M. L. A.) का पद रहता है। यह "मेम्बर लेजिस्लेटिव एसेम्बली" का संक्षेप है। इस सभा के सभापति और उप-सभापति इसके ऐसे सदस्य होते हैं, जिन्हें यह चुनले और गवर्नर-जनरल पसन्द कर ले।

राज्य परिषद्--राज्य परिषद् में ६० सदस्य होते हैं; ३३ निर्वाचित, और सभापति को मिला कर २७ गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द। नामज़द सदस्यों में २० तक (अधिक नहीं) अधिकारियों में से हो सकते हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तों के निर्वाचित और नामज़द सदस्यों की संख्या भिन्न भिन्न है। उदाहरणवत् मध्य प्रान्त बरार के कुल दो सदस्य होते हैं, वे दोनों साधारण निर्वाचक संघ से निर्वाचित होते हैं। संयुक्त प्रान्त के कुल सात सदस्य होते हैं:—३ गैर-मुसलिम निर्वाचित, २ मुसलिम-निर्वाचित, १ सरकारी-नामज़द और १ गैर-सरकारी नामज़द।

राज्य परिषद् का सभापति उसके सदस्यों द्वारा निर्वाचित होकर गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता है। इस परिषद् के सदस्यों के नामों से पहले सम्मानार्थ 'माननीय' ('आनरेबल')

शब्द लगाया जाता है। परिषद् का निर्वाचन प्रायः प्रति पाँचवे वर्ष होता है।

भारतीय व्यवस्थापक मंडल का कार्य क्षेत्र—भारतीय व्यवस्थापक मंडल के तीन कार्य हैं:—(१) शासन कार्य की जाँच करने के लिए आवश्यक प्रश्न पूछना, और प्रस्ताव करना, (२) क़ानून बनाना और (३) सरकारी आय व्यय निश्चित करना। स्मरण रहे कि वह ऐसी संस्था नहीं है, जो स्वतंत्रता-पूर्वक क़ानून बना सके। उसके अधिकारों की सीमा बहुत परिमित है। वह कोई ऐसा क़ानून नहीं बना सकता, जो पार्लिमेंट के, भारतवर्ष की राज्य पद्धति सम्बन्धी किसी ऐक्ट, या अधिकार, अथवा सम्राट् के आदेश पर प्रभाव डाले, या उसे संशोधित करे।

व्यवस्थापक मंडल की कार्य पद्धति—व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के अधिवेशन साधारणतः दिन के ग्यारह से पाँच बजे तक होते हैं। आरम्भ के, पहिले घंटों में प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं। सभाओं के अन्य कार्य के दो भाग होते हैं, सरकारी और ग़ैर-सरकारी। ग़ैर-सरकारी काम के लिए गवर्नर-जनरल द्वारा कुछ दिन निर्धारित कर दिए जाते हैं, अन्य दिनों में सरकारी काम होता है।

राज्य परिषद् में १५, और व्यवस्थापक सभा में २५ सदस्यों की उपस्थिति के बिना कार्यारम्भ नहीं हो सकता। सभाओं की भाषा अंगरेज़ी रखी गई है; सभापति, अंगरेज़ी न जानने वाले सदस्य को देशी भाषा बोलने की अनुमति दे सकता है।

प्रश्न—व्यवस्थापक मंडल की सभाओं का कोई सदस्य निर्धारित नियमों का पालन करते हुए सार्वजनिक महत्व का

प्रश्न पूछ सकता है। जब एक प्रश्न का उत्तर मिल चुके तो ऐसा भी प्रश्न पूछा जा सकता है जिससे पूर्व प्रश्न के विषय के सम्बन्ध में और प्रकाश पड़े। सभापति को अधिकार है कि कुछ दशाओं में वह किसी प्रश्न, उसके अंश, या पूरक प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति न दे।

प्रस्ताव—व्यवस्थापक मंडल के प्रस्ताव केवल सिफ़ारिश के रूप में होते हैं, वे भारत सरकार पर बाध्य नहीं होते। इस संस्था में निम्न लिखित विषयों के प्रस्ताव उपस्थित नहीं हो सकते :—विदेशी राज्यों या देशी रियासतों सम्बन्धी कोई विषय, और ऐसे विषय जो सम्राट् के अधिकार-गत किसी स्थान की अदालत में पेश हों। कुछ विषयों के लिए गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति बिना, कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया जा सकता।

क़ानून किस प्रकार बनते हैं ?—जब किसी सभा का कोई सदस्य किसी क़ानून के मसविदे (बिल) को पेश करना चाहता है तो वह नियमानुसार उस की सूचना देता है। पश्चात् निश्चित् किए हुए दिन मसविदा सभा में पेश किया जाता है। उस समय पूरे मसविदे के सिद्धान्तों पर विचार होता है। यदि आवश्यकता हो तो मसविदा साधारणतया उसी सभा की (जिसका सदस्य मसविदा पेश करता हो) या दोनों सभाओं की एक (सिलेक्ट) कमेटी में विचारार्थ भेजा जाता है। यह कमेटी उसके सम्बन्ध में संशोधन, परिवर्तन, या परिवर्द्धन आदि करके अपनी रिपोर्ट देती है। पश्चात् बिल के वाक्यांशों (Clauses) पर एक एक करके विचार किया जाता है और वे आवश्यक सुधार सहित पास किए जाते हैं। फिर सम्पूर्ण मसविदा, स्वीकृत संशोधनों सहित, पास करने का प्रस्ताव

उपस्थित किया जाता है। यह प्रस्ताव पास होजाने पर मसविदा दूसरी सभा में भेजा जाता है। वहाँ पर फिर इसी क्रम के अनुसार विचार होता है। यदि मसविदा यहाँ बिना संशोधन के पास होजाय तो उसे गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है और स्वीकृति मिल जाने पर वह क़ानून बन जाता है। अगर दूसरी सभा में मसविदा संशोधनों सहित पास हो तो उसे इस निवेदन सहित लौटाया जाता है कि पहली सभा उन संशोधनों पर सहमत होजाय। संशोधनों पर फिर वही कार्रवाई, सूचना देने, विचार करने, स्वीकृति या अस्वीकृति का समाचार भेजने आदि की, की जाती है। अगर अन्त में मसविदा इस सूचना से लौटाया जाय कि दूसरी सभा ऐसे संशोधनों पर अनुरोध करती है, जिन्हें पहली सभा मानने को तैयार नहीं है तो वह सभा चाहे तो, (१) मसविदे को रोक दे, या (२) अपने सहमत न होने की रिपोर्ट गवर्नर-जनरल के पास भेज दे। दूसरी परिस्थिति में, मसविदा और संशोधन दोनों सभाओं की ऐसी संयुक्त मीटिंग में पेश होते हैं, जो गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार करे। इसका अध्यक्ष, राज्य परिषद् का सभापति होता है। मसविदे और विचारणीय संशोधनों पर वादानुवाद होता है, जिन संशोधनों के पक्ष में बहुमत होता है, वे स्वीकृत समझे जाते हैं। इस प्रकार मसविदा, स्वीकृत संशोधनों सहित पास होता है और यह मसविदा दोनों सभाओं से पास हुआ समझा जाता है।

राज्य परिषद् ने कई बार ऐसे प्रस्ताव पास किए, जिनका भारतीय व्यवस्थापक सभा ने विरोध किया, तथा ऐसे प्रस्तावों को अस्वीकार किया, जिन्हें भारतीय व्यवस्थापक सभा ने पास

किया। क्योंकि भारतीय व्यवस्थापक सभा, राज्य परिषद् की अपेक्षा कहीं अधिक निर्वाचकों की प्रतिनिधि सभा है, और लोकमत को सूचित करने वाली है, राज्य परिषद् का उक्त कार्य सर्व साधारण के हितों का घातक है। जनता इसके बहुत विरुद्ध है।

गवर्नर-जनरल के अधिकार—गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि वह राज्य परिषद् के सदस्यों में से किसी को सभापति नियत करे। वह राज्य परिषद् तथा भारतीय व्यवस्थापक सभा के सन्मुख भाषण कर सकता है, और इस काम के लिए उनके सदस्यों की मीटिंग करा सकता है। कई विषयों के मसविदे उसकी अनुमति बिना, किसी सभा में पेश नहीं हो सकते। दोनों सभाओं में पास होने पर भी मसविदा उसकी स्वीकृति बिना क़ानून नहीं बनता।

जब कोई सभा किसी क़ानून के मसविदे के उपस्थित किए जाने की अनुमति न दे, या, उसे गवर्नर-जनरल की इच्छानुसार पास न करे तो यदि गवर्नर-जनरल चाहे तो उसे यह तसदीक़ करने का अधिकार है कि देश की शान्ति, सुरक्षा या हित की दृष्टि से इस मसविदे का पास होना आवश्यक है। उसके ऐसा तसदीक़ कर देने पर, वह मसविदा क़ानून बन जायगा, चाहे कोई सभा उसे स्वीकार न करे।

भारतीय आय व्यय और भारत सरकार—भारत सरकार के अनुमानित आय व्यय का विवरण ('बजट') प्रति वर्ष भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सामने रखा जाता है। गवर्नर-जनरल की सिफ़ारिश बिना, किसी काम में रुपया लगाने का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता। विशेषतया निम्न लिखित

व्यय की मद्दों के वास्ते सरकारी प्रस्ताव व्यवस्थापक सभा के मत (वोट) के लिए नहीं रखे जाते, न सालाना विवरण के समय कोई सभा उन पर वादानुवाद कर सकती है, जब तक गवर्नर-जनरल इसके लिए आज्ञा न दे दे :—

(१) ऋण का सूद ।

(२) ऐसा ख़र्च जिसकी रक़म क़ानून से निर्धारित हो ।

(३) उन लोगों की पैंशन या तनख्वाहें, जो सम्राट् या भारत मंत्री द्वारा, या सम्राट् की स्वीकृति से, नियुक्त किए गए हों ।

(४) चीफ़ कमिश्नरों या जुडिशल कमिश्नरों का वेतन ।

(५) वह ख़र्च, जिसे कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल ने (अ) धार्मिक, (आ) राजनैतिक, या (इ) रक्षा अर्थात् सेना सम्बन्धी ठहराया हो ।

इन मद्दों को छोड़कर अन्य विषयों के ख़र्च के सरकारी प्रस्ताव भारतीय व्यवस्थापक सभा के मत के वास्ते, माँग के स्वरूप में रखे जाते हैं । सभा को अधिकार है कि वह किसी माँग को स्वीकार करे, या न करे, अथवा घटाकर स्वीकार करे; परन्तु कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल सभा के निश्चय को रद्द कर सकता है । विशेष दशाओं में गवर्नर-जनरल ऐसे ख़र्च के लिए स्वीकृति दे सकता है जो उसकी सम्मति में देश की रक्षा या शान्ति के लिए आवश्यक हो ।

बजट राज्य परिषद् में भी पेश होता है, पर उसे घटाने या किसी माँग को अस्वीकार करने का अधिकार केवल भारतीय व्यवस्थापक सभा को ही है। राज्य-परिषद् अपने प्रस्ताव आदि

से, सरकार की आर्थिक नीति या साधनों की आलोचना कर सकती है।

विशेष वक्तव्य—ऊपर यह बताया जा चुका है कि भारतीय व्यवस्थापक मंडल को क़ानून बनाने तथा खर्च स्वीकार करने के सम्बन्ध में बहुत परिमित अधिकार हैं, और जो थोड़े से अधिकार हैं, उनमें भी गवर्नर-जनरल हस्तक्षेप कर सकता है। उसे उसके बनाए क़ानून तथा खर्च सम्बन्धी प्रस्ताव को अस्वीकार करने का अधिकार है। निदान, भारत सरकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के आदेशानुसार कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है। इस प्रकार सन् १९१९ ई० के सुधारों के अनुसार भारत सरकार भारतीय व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं है; इसी बात को यों कहा जाता है कि उक्त सुधारों से केन्द्र में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की स्थापना नहीं हुई।

सन् १९३५ ई० का विधान और भारतीय व्यवस्थापक मंडल—सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार, संघ का निर्माण हो जाने पर भारतवर्ष के केन्द्रीय क़ानून बनाने वाली संस्था का नाम संघीय व्यवस्थापक मंडल ('फीडरल लेजिस्लेचर') होगा। उसमें दो सभाएँ होंगी, राज्य परिषद ('कौंसिल आफ स्टेट') और संघीय व्यवस्थापक सभा ('फीडरल ऐसेम्बली')। राज्य परिषद में २६० सदस्य होंगे:—१५६ ब्रिटिश भारत के और १०४ देशी राज्यों के; यह एक स्थाई संस्था होगी, इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष चुने जाया करेंगे। ब्रिटिश भारत के सदस्यों में से १५० जनता द्वारा निर्वाचित, और ६ नामज़द होंगे

संघीय व्यवस्थापक सभा में ३७५ सदस्य होंगे, २५० ब्रिटिश भारत के और १२५ देशी राज्यों के। ब्रिटिश भारत के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष

होगा—वह प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं (ऐसेम्बली) * के सदस्यों द्वारा प्रति पाँचवें वर्ष होगा।

दोनों सभाओं में देशी राज्यों की ओर से लिए जाने वाले सदस्य निर्वाचित न होकर नरेशों द्वारा निर्धारित हिसाब से नियुक्त हुआ करेंगे। निर्धारित नियमों तथा सीमा को ध्यान में रखते हुए संघीय व्यवस्थापक मंडल समस्त ब्रिटिश भारत, या उसके किसी भाग के लिए, या संघ में सम्मिलित देशी राज्य के लिए क़ानून बना सकेगा। कुछ विषय ऐसे हैं, जिनके मसविदे या संशोधन गवर्नर-जनरल की स्वीकृति बिना मंडल में उपस्थित नहीं किये जा सकेंगे। गवर्नर-जनरल चाहे तो वह मंडल में स्वीकृत प्रस्ताव तथा क़ानून को अस्वीकार कर सकेगा, अथवा उसे सम्राट् की स्वीकृति के लिए रख सकेगा।

अनुमानित आय व्यय का नक़्शा दोनों सभाओं के सामने उपस्थित किया जाया करेगा, परन्तु जैसा कि आज कल है, मंडल को व्यय की कितनी ही मदों पर मत देने का अधिकार न होगा। व्यय की जिन मदों पर मंडल को मत देने का अधिकार होगा, यदि उनमें से किसी के सम्बन्ध में दोनों सभाओं में मत भेद हो तो दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में बहुमत से जो निर्णय होगा, वह माना जायगा। गवर्नर-जनरल को अधिकार होगा कि यदि सभाओं ने व्यय की कोई माँग स्वीकार नहीं की, या घटा कर स्वीकार की, तो वह अपने उत्तरदायित्व के विचार से आवश्यकता समझने पर, अपने विशेषाधिकार से, रद्द की हुई या घटाई हुई माँग की पूर्ति कर सके।

गवर्नर-जनरल (१) संघीय व्यवस्थापक मंडल के अवकाश के समय आर्डिनैंस (अस्थाई क़ानून) बना सकेगा, (२) अपने उत्तरदायित्व के विचार से आवश्यक समझने पर, कुछ दशाओं में, मंडल के कार्य-काल में आर्डिनैंस बना सकेगा, और (३) विशेष दशाओं में, वह स्थायी रूप से भी, मंडल की इच्छा के विरुद्ध, क़ानून बना सकेगा।

---

* देखो अगले परिच्छेद का अन्तिम भाग।

सातवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल

—: * :—

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों का जन्म—पिछले परिच्छेद में बताया जा चुका है कि सन् १८३३ ई० से पूर्व बंगाल, बम्बई और मद्रास की सरकारें ही अपने अपने प्रान्त के लिए क़ानून बनाती थीं। उक्त वर्ष बम्बई और मद्रास सरकार का क़ानून बनाने का अधिकार हटा कर, बंगाल में एक केन्द्रीय व्यवस्थापक परिषद् का सूत्रपात किया गया। इस परिषद् में, सन् १८५३ ई० में बंगाल, बम्बई, मद्रास और पश्चिमोत्तर प्रदेश की सरकारों द्वारा नियुक्त एक एक सदस्य सम्मिलित किया गया। इस व्यवस्था से यह आशा की गई थी कि सब प्रान्तों की आवश्यकता का विचार रखा जा सकेगा। परन्तु पीछे अनुभव हुआ कि इतने बड़े क्षेत्र के लिए एक ही व्यवस्थापक संस्था पर्याप्त नहीं है, प्रान्तों में उनकी परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुसार क़ानून बनाए जाने की व्यवस्था होनी चाहिये। इसलिए सन् १८६१ ई० के ऐक्ट से बम्बई और मद्रास की सरकारों को पुनः क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया। इसी प्रयोजन के लिए उनको अपनी प्रबंधकारिणी सभाओं के सदस्यों में वहाँ का ऐडवोकेट जनरल (Advocate General) तथा सरकार द्वारा नामज़द दूसरे मेम्बरों को शामिल करने का अधिकार दिया गया, जिनकी संख्या ४ से कम और ८ से अधिक न हो, और यह नियम किया गया कि इन में

ग़ैर-सरकारी मेम्बरों की संख्या आधी से कम न हो। उपर्युक्त ऐक्ट के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के अधिकार बहुत परिमित रखे गए। कोई परिषद् केवल उसी विषय का क़ानून बना सकती थी, जिसका उसके प्रान्त से ही सम्बन्ध हो, तथा जब तक उसके बनाए क़ानून को वहाँ के गवर्नर के अतिरिक्त गवर्नर-जनरल स्वीकार न कर ले, वह क़ानून मान्य नहीं होता था। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार के प्रधान अधिकारी को ब्रिटिश भारत भर में बनने वाले क़ानूनों पर नियंत्रण करने का अधिकार दिया गया। उसे बंगाल में तथा आवश्यकतानुसार अन्य प्रान्तों में भी व्यवस्थापक परिषदें बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ।

ये परिषदें इस प्रकार बनीं :—बंगाल सन् १८६२ ई० में, संयुक्त प्रान्त १८८६, पंजाब १८९८, बर्मा १८९८, पूर्वी बंगाल और आसाम १९०५, मध्यप्रान्त १९१३ में।

वृद्धि और विकास—सन् १८९२ ई० के कौंसिल्स ऐक्ट तथा उसके बाद बनने वाले कायदों से प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों में कुछ परिवर्तन हुआ। उनके सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। परन्तु कुल सदस्यों में बहु-संख्यक सरकारी ही रहे। उन्नत प्रान्तों में ग़ैर-सरकारी सदस्यों को, अधिकांश में सार्वजनिक संस्थाओं की सिफ़ारिश पर, नामज़द किया जाने लगा। परिषदों को बजट के सम्बन्ध में प्रश्न और वाद विवाद करने का अधिकार प्राप्त हुआ। परन्तु वे उस पर अपना मत नहीं दे सकती थीं; बजट निश्चय करने का पूर्ण अधिकार प्रबन्धकारिणी सभा को ही था।

सन् १९०९ ई० के मार्ले-मिन्टो सुधारों से निश्चय किया गया

कि परिषदों से सरकारी सदस्यों का बहुमत हटा दिया जाय। यदि कोई परिषद् ऐसा क़ानून बनाए जिसे सरकार न चाहे, तो सरकार उसे अस्वीकार (निषेध) करदे। और, यदि परिषद् किसी ऐसे क़ानून को बनाना मंजूर न करे, जिसे सरकार चाहे तो वह क़ानून केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा द्वारा बनवा लिया जाय। परिषदों में प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यों के अतिरिक्त जो सदस्य होते थे, उनकी संख्या बढ़ा कर बड़े प्रान्तों में ५० और छोटों में ३० कर दी गई। अब परिषदों को यह अधिकार मिला कि बजट निश्चित होने से पहले वे उस पर बहस करें, कुछ सार्वजनिक विषयों के प्रस्ताव उपस्थित करें जो सिफ़ारिश के रूप में हों, और सरकार से सार्वजनिक महत्व के प्रश्न पूछें। इन सुधारों में निर्वाचन का सिद्धान्त मान्य किया गया, परन्तु केवल परिमित निर्वाचक संघ और अप्रत्यक्ष निर्वाचन का ही लक्ष्य रखा गया। म्युनिसिपैलिटियों, और लोकल बोर्डों के अतिरिक्त मुसलमानों, ज़मींदारों, व्यापार-सभा, खान वालों तथा चाय और नील की खेती वालों को निर्वाचन अधिकार दिया गया।

सन् १९१९ ई० के सुधार—सन् १९१९ ई० के सुधारों से प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों की संख्या और बढ़ाई गई, निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से और बहु-संख्यक निर्वाचकों द्वारा होने लगा। सुधारों में पृथक् पृथक् जातियों के प्रतिनिधियों के रखे जाने का खंडन किया गया, परन्तु मुसलमानों को, और पंजाब में सिक्खों को भी अपने विशेष प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

वर्तमान परिषदें—इन सुधारों के अनुसार प्रत्येक 'बड़े'

(Major) प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद् है। 'छोटे' (Minor) प्रान्तों में से केवल कुर्ग में परिषद् है। परिषदों की आयु साधारणतः तीन वर्ष होती है। प्रत्येक परिषद् में उस प्रान्त की प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्य, गवर्नर से नामज़द किये हुए सदस्य, तथा भिन्न भिन्न निर्वाचक संघों द्वारा निर्वाचित सदस्य, रहते हैं। किसी परिषद् के सदस्यों में २० फ़ी सदी से अधिक सरकारी, और ७० फ़ी सदी से कम निर्वाचित नहीं होते। सब परिषदों में जाति-गत प्रतिनिधित्व है; इससे देश की बड़ी हानि होती है, यह पहले लिखा जा चुका है।

भिन्न भिन्न प्रान्तों में परिषद् के सदस्यों की संख्या भिन्न भिन्न है। सब से अधिक सदस्य बंगाल में हैं, वहाँ १३९ सदस्य हैं। मध्यप्रान्त में कुल ७० सदस्य हैं, ५४ निर्वाचित और १६ नामज़द (८ सरकारी, और ८ ग़ैर-सरकारी)। निर्वाचितों का हिसाब इस प्रकार है :—

६ ग्राम्य, मुसलमानों द्वारा
१ नागरिक, ” ”
३१ ग्राम्य, ग़ैर-मुसलमानों द्वारा
९ नागरिक, ” ”
३ ज़मींदारों ”
१ नागपुर विश्वविद्यालय ”
२ उद्योग और व्यापार वालों ”
१ खान, और चाय ”

परिषदों के नियम—प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे भारतीय व्यवस्थापक मंडल के।

इन के निर्वाचकों के लिए साम्पत्तिक योग्यता का परिमाण अपेक्षाकृत बहुत कम है, ३६) रु० वार्षिक अर्थात् तीन रुपये मासिक किराया देने वाला, या इतने किराये वाले मकान का मालिक, या २००) रु० वार्षिक आय पर म्युनिसिपल टैक्स, या निर्धारित मालगुजारी, या भारत सरकार को आय-कर देने वाला व्यक्ति निर्वाचित हो सकता है।

किसी व्यवस्थापक परिषद् का सदस्य बनने के लिए खड़े होने वाले उम्मेद्वार को २५०) जमानत जमा करनी होती है।

प्रत्येक व्यवस्थापक परिषद् का सभापति, परिषद् द्वारा निर्वाचित होकर गवर्नर से नियुक्त होता है। उपसभापति परिषद् के सदस्यों में से ही, परिषद् द्वारा चुना जाता है। सभापति और उपसभापति का वेतन परिषद् द्वारा निश्चय होता है।

परिषदों के अधिकार—व्यवस्थापक परिषदों को प्रश्न पूछने और प्रस्ताव करने का वैसा ही अधिकार है जैसा भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सम्बन्ध में, हम पिछले परिच्छेद में बता आए हैं। इन परिषदों में किसी प्रस्ताव या उसके किसी भाग के उपस्थित किए जाने से रोकने का अधिकार, उस प्रान्त के गवर्नर को होता है।

प्रत्येक प्रान्तिक व्यवस्थापक परिषद् को, कुछ नियमों का पालन करते हुए, यह अधिकार है कि वह अपने प्रान्त अथवा उसके किसी भाग की शान्ति अथवा सुप्रबन्ध के लिए सार्वजनिक महत्व का क़ानून बनाए, या अपने प्रान्त सम्बन्धी उन क़ानूनों का संशोधन करे जो ब्रिटिश भारत के अन्य अधिकारी या संस्था ने बनाए हों। परिषदों को पार्लिमैंट के बनाए किसी क़ानून के सम्बन्ध में कोई परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। कुछ विषयों

के क़ानून बनाने या उन पर विचार करने के पूर्व, गवर्नर की और कुछ विशेष दशाओं में, गवर्नर-जनरल की स्वीकृति ली जानी आवश्यक है।

क़ानून कैसे बनते हैं?—प्रत्येक सदस्य को अधिकार है कि वह परिषद् में विचारार्थ किसी विषय के क़ानून का मसविदा उपस्थित करे, जो प्रान्तिक परिषद् के अधिकार-सीमा के अन्दर हो; सरकारी मसविदा सरकार के उस सदस्य द्वारा उपस्थित किया जाता है जो मसविदे के विषय का अधिकार रखता हो। जब कोई ग़ैर-सरकारी सदस्य कोई मसविदा उपस्थित करना चाहता है तो उसे अपने इस विचार की, पहले सूचना देनी होती है। जब कोई मसविदा नियमानुसार उपस्थित हो चुकता है तो प्रायः विशेष कमेटी में भेजा जाता है। इस कमेटी का चेयर-मैन वह सरकारी सदस्य होता है जो इस विषय का अधिकार रखता हो। उसकी रिपोर्ट परिषद् में पेश की जाती है। पश्चात् मसविदे के प्रत्येक वाक्यांश पर, पृथक् पृथक् विचार किया जाता है। यदि बहुमत अनुकूल हो तो मसविदा पास किया जाता है; और गवर्नर तथा उसके पश्चात् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति मिलने पर, वह क़ानून बन जाता है।

गवर्नर के अधिकार—गवर्नर, व्यवस्थापक परिषद् के अधिवेशन के लिए समय और स्थान नियत करता है। उसे परिषद् के सन्मुख भाषण करने का अधिकार है, और इस कार्य के लिए वह परिषद् के सदस्यों को बुला सकता है। वह परिषद् को उसकी साधारण अवधि (तीन वर्ष) से पहले बर्ख़ास्त कर सकता है अथवा, यदि वह, विशेष दशाओं में, उचित समझे, तो उसे एक साल तक बढ़ा सकता है। अगर गवर्नर यह तसदीक़

करदे कि कोई क़ानूनी मसविदा या उसका कोई अंश या संशोधन ऐसा है जो उसके प्रान्त या अन्य किसी प्रान्त अथवा उसके किसी भाग की शान्ति में बाधक होगा या उससे सार्वजनिक हित को हानि पहुँचेगी और, वह (गवर्नर) यह हिदायत करदे कि उक्त मसविदे या उसके किसी अंश या संशोधन पर परिषद् में विचार नहीं होना चाहिये तो उसकी हिदायत के अनुसार काम होता है। गवर्नर किसी मसविदे या उसके किसी अंश को अपने संशोधनों सहित परिषद् में पुनः विचारार्थ भेज सकता है ; वह परिषद् के स्वीकृत मसविदे को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है, अथवा उसे गवर्नर-जनरल के विचारार्थ भी रख सकता है।

यदि परिषद् किसी रक्षित विषय सम्बन्धी क़ानूनी मसविदे को उपस्थित किए जाने की अनुमति न दे अथवा उसे उस रूप में पास न करे, जिसमें गवर्नर ने पास कराने की सिफ़ारिश की हो तो गवर्नर यह तसदीक़ कर सकता है कि उक्त विषय सम्बन्धी उत्तरदायित्व-पालन के लिए उसका पास होना आवश्यक है। इस पर वह पास समझा जाता है। ऐसा क़ानून गवर्नर का बनाया हुआ क़ानून कहा जाता है। सम्राट् को अधिकार है कि वह चाहे जिस प्रान्तीय क़ानून को रद्द कर दे।

प्रान्तीय आय-व्यय के नियम—प्रत्येक प्रान्त की आय-व्यय का अनुमान नक़्शे की शक्ल में, प्रति वर्ष परिषद् के सन्मुख उपस्थित किया जाता है, और आय को ख़र्च करने के लिए प्रान्तीय सरकार के प्रस्तावों पर परिषद् का मत लिया जाता है। परिषद् किसी सरकारी माँग को स्वीकार कर सकती है, या उसे पूर्णतया अथवा उसके किसी अंश को अस्वीकार

कर सकती है। इस विषय में इन नियमों पर ध्यान दिया जाता है :—

(१) व्यय की निम्न लिखित मद्दों के प्रस्तावों पर परिषद् के मत नहीं लिए जातेः—

(क) सरकारी ऋण और उस पर व्याज ।

(ख) जो ख़र्च किसी क़ानून से निश्चित हो चुका है ।

(ग) उन लोगों का वेतन जो सम्राट् द्वारा या उसकी पसंद से, अथवा कौंसिल-युक्त भारत-मंत्री द्वारा नियुक्त किए गए हों ।

(घ) प्रान्त के हाईकोर्ट के जजों तथा एडवोकेट-जनरल का वेतन ।

(२) अगर कोई माँग रक्षित विषय सम्बन्धी हो और गवर्नर यह निर्णय करदे कि उस विषय सम्बन्धी उत्तरदायित्व को पूर्ण करने के लिए उस खर्च की आवश्यकता है तो प्रान्तीय सरकार, परिषद् के निर्णय को रद्द कर सकती है ।

आवश्यकता के समय गवर्नर ऐसे ख़र्च के किए जाने का अधिकार दे सकता है जो उसकी सम्मति में प्रान्त की शान्ति या सुरक्षा के लिए, अथवा किसी विभाग के संचालन के लिए, ज़रूरी हो । जब तक गवर्नर, परिषद् को इस बात की सिफ़ारिश न करे, कोई रक़म किसी कार्य के लिए व्यय करने का प्रस्ताव नहीं होता ।

विशेष वक्तव्य—ऊपर बताया जा चुका है कि प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के, क़ानून बनाने तथा ख़र्च स्वीकार करने के सम्बन्ध में अधिकार बहुत परिमित हैं । इनमें भी गवर्नर

हस्तक्षेप कर सकता है। सन् १९१९ ई० के सुधारों के बाद कई बार प्रान्तों में मंत्रियों का वेतन घटाने आदि से असन्तोष प्रकट किया गया और विविध प्रस्तावों पर सरकार की बारबार हार हुई। इससे यद्यपि मंत्रियों ने त्याग पत्र दिया, परन्तु गवर्नर ने अपने उत्तरदायित्व के विषयों के लिए आवश्यक खर्च ले ही लिया, उसका कार्य नहीं रुका। इस से स्पष्ट है कि उक्त सुधारों के बाद भी प्रान्तों में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन नाम-मात्र का ही रहा।

सन १९३५ ई० का विधान और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल - सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों के निर्वाचकों की साम्पत्तिक तथा अन्य योग्यता का परिमाण कम कर दिया गया है, इसके फल-स्वरूप अब निर्वाचकों की संख्या में खूब वृद्धि हुई है, अब लगभग साढ़े तीन करोड़ पुरुष स्त्री मत दे सकेंगे। हाँ, निर्वाचक पहले की अपेक्षा अब अधिक निर्वाचक संघों में निभक्त होंगे, अब कुल मिलाकर १५ निर्वाचक संघ हैं, यह बात नागरिक हितों के विरुद्ध है।

नवीन विधान से पूर्व जो व्यवस्थापक परिषदें थीं, वे अब व्यवस्थापक सभाएँ कहलाएँगी। इनके सदस्यों की संख्याएँ बढ़ा दी गई हैं—ये संख्याएँ इस प्रकार होंगी :—बंगाल २५०, मदरास २१५, बम्बई १७५, बिहार १५२, मध्यप्रान्त-बरार ११२, आसाम १०८, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त ५०, उड़ीसा ६०, सिंध ६०। इन सदस्यों में खासी संख्या उन व्यक्तियों की होगी, जो भिन्न भिन्न साम्प्रदायिक क्षेत्रों से निर्वाचित होंगे।

नवीन विधान के अनुसार छः प्रान्तों में दूसरी व्यवस्थापक संस्थाएँ भी होंगी जिनका नाम 'व्यवस्थापक परिषद' होगा। इनके सदस्यों की संख्या इस प्रकार होगी :—मदरास ५४ से ५६ तक, बम्बई २९ या ३०, बंगाल ६३ से ६५ तक, संयुक्त प्रान्त ५८ से ६० तक, बिहार २९

या ३०, आसाम २१ या २२। भिन्न भिन्न प्रान्तों में ३ से १० तक सदस्य गवर्नर द्वारा नामज़द होंगे। बंगाल में २७ और विहार में १२ सदस्य उस उस प्रान्त की व्यवस्थापक सभा द्वारा, अप्रत्यक्ष रीति से चुने हुए होंगे। प्रथम संगठन के बाद प्रत्येक प्रकार के सदस्यों में लगभग एक-तिहाई तीन तीन वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण करते जायँगे। केन्द्र में दूसरी व्यवस्थापक संस्था (राज्य परिषद) रहने का अनुभव जनता को अच्छा नहीं हुआ था, अब छः प्रान्तों में भी इसका आयोजन हो गया।

जिस प्रकार १९१९ के क़ानून के अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों को वजट पर बहुत परिमित अधिकार हैं, नवीन विधान के अनुसार बनने वाले व्यवस्थापक मंडलों को भी व्यय की कई मदों पर मत देने का अधिकार न होगा।

अब गवर्नर-व्यवस्थापक मंडल के अवकाश के समय में एवं उसके कार्य काल में 'आर्डिनैन्स' या अस्थाई क़ानून बना सकेगा। कुछ दशाओं में, वह स्थाई क़ानून भी बना सकेगा। गवर्नरों को यह अधिकार पहले न था, अब सन् १९३५ ई० के क़ानून से मिला है।

आठवाँ परिच्छेद

ज़िले का शासन

प्रान्तों का शासन किस प्रकार होता है, यह पहले बताया जा चुका है। मद्रास प्रान्त को छोड़ कर प्रत्येक प्रान्त में कुछ कमिश्नरियाँ हैं। कमिश्नरी के अफ़सर को कमिश्नर कहते हैं। वह कोई विशेष महत्व-पूर्ण शासन-कार्य नहीं करता, वह अपने अधीन ज़िला अफ़सरों के कार्य की देख-रेख करता है, तथा मालगुजारी के मामलों की अपील सुनता है।

शासन व्यवस्था में ज़िले का स्थान—मद्रास प्रान्त में, तथा अन्य प्रान्तों की प्रत्येक कमिश्नरी में, कुछ ज़िले हैं। ब्रिटिश भारत में कुल ज़िलों की संख्या २६७ है।* ज़िलों का क्षेत्रफल, जन संख्या और सरकारी आय भिन्न भिन्न है। तथापि राज्य की कल जैसी एक ज़िले में चलती दिखाई पड़ती है, वैसी ही प्रायः अन्य ज़िलों में भी हैं। जैसे अफ़सर एक में काम करते हैं, वैसे ही औरों में भी हैं। जनता के काम-काज का मुख्य स्थान, और लोक व्यवहार का केन्द्र ज़िला है। जो मनुष्य अन्य प्रान्तों तथा दूसरे शहरों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, उन्हें भी बहुधा ज़िले में काम पड़ जाता है। यहाँ की ही शासन-व्यवस्था को देखकर जनसाधारण समस्त देश के राज्य-प्रबन्ध का अनुमान किया करते हैं।

ज़िला-मजिस्ट्रेट के कार्य—प्रत्येक ज़िले का प्रधान अफ़सर ज़िला-मजिस्ट्रेट कहलाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, उसे पंजाब और मध्य प्रान्त आदि नान-रेग्यूलेशन प्रान्तों में 'डिप्टी कमिश्नर' तथा बंगाल, संयुक्त प्रान्त, बिहार आदि रेग्यूलेशन प्रान्तों में, कलेक्टर कहते हैं। 'कलेक्टर' (Collector) का अर्थ है वसूल करने वाला। जिला मजिस्ट्रेट को कलेक्टर इस लिए कहते हैं कि उस पर ज़िले की माल-गुज़ारी वसूल करने की जिम्मेवारी है। वह अपने ज़िले के भूमि-सम्बन्धी मामलों पर विचार करता है, सरकार और प्रजा के सम्बन्ध का ध्यान रखता है, और ज़मींदारों तथा किसानों

---

* सन् १६३५ ई० के विधान के अनुसार बर्मा ब्रिटिश भारत से पृथक् हो गया है, अतः अब जिलों की संख्या २३० रह गई है।

आदि के झगड़े का वह फ़ैसला करता है। दुर्भिक्ष अथवा अन्य आवश्यकता के समय कृषकों को सरकारी सहायता उसकी सम्मति के अनुसार मिलती है। ज़िले के ख़ज़ाने का वही उत्तरदाता है। उसे म्यूनिसिपैलटियों तथा ज़िला-बोर्डों की निगरानी का अधिकार है। उसे अव्वल दर्जे की मजिस्ट्रेटी के भी अधिकार प्राप्त हैं, जिन से वह एक एक अपराध पर साधारणतः दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपए तक का जुर्माना कर सकता है। ज़िले की सब प्रकार की सुख शान्ति का वही उत्तरदाता है। वही स्थानीय पुलिस की निगरानी भी करता है। इस बात के निश्चय करने में, कि कहाँ पुल, सड़क इत्यादि बनने चाहिये, कहाँ सफ़ाई का प्रबन्ध होना चाहिये, तथा ज़िले के किन किन स्थानों को स्थानीय स्वराज्य का अधिकार मिलना चाहिये, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। ज़िले में जो भी प्रबन्ध ठीक न हो, उसका सुधार करना, और हर एक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। ज़िले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहातों में दौरा भी करना होता है।

ज़िले के अन्य कार्यकर्ता—ज़िले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, यथाः—शान्ति रखना, झगड़ों का फ़ैसला करना, मालगुज़ारी वसूल करना, सड़क पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना, रोगियों का इलाज करना, म्युनिसिपल तथा लोकल बोर्डों की निगरानी रखना, जेलख़ाना और पाठशाला आदि का निरीक्षण करना, इत्यादि। इन विविध कार्यों के लिए ज़िले में कई एक अफ़सर रहते हैं, जैसे पुलिस

सुपरिंटेंडेंट, डिस्ट्रिक्ट जज, मुन्सिफ़, इग्ज़ैक्टिव इंजिनियर, सिविल सर्जन, जेल-सुपरिंटेंडेंट, तथा स्कूल-इनस्पेक्टर आदि ।

ये अफ़सर अपने पृथक्-पृथक् विभागों के उच्च कर्मचारियों के अधीन होते हैं, परन्तु शासन के विचार से ज़िला-जज व मुन्सिफ़ आदि को छोड़, सब पर ज़िला-मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। ज़िले के हाकिम से उसका ही संकेत होता है। इसके कार्य में सहायता देने के लिए डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट भी रहते हैं।

ज़िले के भाग और उनके अधिकारी—प्रायः प्रत्येक ज़िले के कुछ भाग होते हैं, उन्हें सब-डिविज़न कहते हैं। हर एक सब-डिविज़न एक डिप्टी कलेक्टर, अथवा 'ऐक्सट्रा ऐसिस्टैंट कमिश्नर' के अधीन रहता है। अपनी अपनी अमलदारी में सब-डिविज़न के अफ़सरों के अधिकार थोड़े बहुत भेद से कलेक्टर-मजिस्ट्रेटों के समान ही होते हैं।

बंगाल और बिहार को छोड़ कर अन्य प्रान्तों में, प्रत्येक ज़िले के अन्तर्गत ५, ६ तहसील (या ताल्लुक़े) हैं। जिलों के ये भाग सब-डिप्टी-कलेक्टरों, या तहसीलदारों के अधीन हैं। तहसीलदार आदि कर्मचारी प्रजा और सरकार के बीच मानों मध्यस्थ रूप हैं। उनका काम दोनों को एक दूसरे के विषय में आवश्यक सूचना देते रहना है। ये अपने इलाक़े के माल और फ़ौजदारी के ही काम के उत्तरदाता नहीं हैं, वरन् ये म्यूनिसिपैलटियों और देहाती बोर्डों में भी आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं। इनके सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, पेशकार, क़ानूनगो, रेवन्यू-इन्स्पेक्टर आदि होते हैं। प्रायः एक तहसील में कई सर्कल या हल्क़े होते हैं।

गाँवों के अधिकारी—तहसीदारों के अधीन गाँवों में नम्बरदार (पटेल), चौकीदार और पटवारी (कुलकर्णी) रहते हैं। नम्बरदार गाँव का सब से बड़ा अधिकारी होता है। वह ज़मींदारों से मालगुज़ारी तथा आबपाशी की रक़म वसूल करके तहसील में भेजता है, वहाँ से वह ज़िले में भेजी जाती है। वह अपने गाँव में शान्ति रखने का प्रयत्न करता है।

चौकीदार पहरा देता, और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह ख़बर देता है कि गाँव में उस सप्ताह के भीतर कितनी मृत्यु हुईं और कितने बालकों का जन्म हुआ। वह गाँव की चोरी, क़त्ल तथा अन्य अपराधों की भी रिपोर्ट करता है। चौकीदारों का अफ़सर मुखिया कहलाता है।

पटवारी अपने हल्क़े (ग्राम या ग्राम-समूह) के किसानों और ज़मींदारों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के काग़ज़ तथा रजिस्टर आदि रखता है। कोई खेत या उसका कुछ हिस्सा बिक जाय, या किसी खेत का मालिक बदल जाय या मर जाय, तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है, और अपने काग़ज़ों में उचित सुधार कर लेता है। वह खेतों के नक्शे बनाता है, और मालगुज़ारी आदि का हिसाब रखता है।

बंगाल और बिहार के जिन जिन भागों में मालगुज़ारी का स्थाई बंदोबस्त है, उनमें तहसीलदार, नम्बरदार और पटवारी आदि कर्मचारी नहीं रहते। सब-डिविज़नल अफ़सर के नीचे, थानेदार, तथा एक एक ग्राम-समूह के लिए दफ़ादार और प्रत्येक ग्राम में चौकीदार रहते हैं।

नवाँ परिच्छेद

सरकारी आय-व्यय

—:*:—

भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों का सम्बन्ध—भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों का आर्थिक सम्बन्ध समय समय पर बदलता रहा है। सन् १८३३ ई० तक बम्बई, मदरास और बंगाल इन तीनों प्रान्तों में जुदा जुदा हिसाब रहता था। उस वर्ष के ऐक्ट से फोर्ट विलियम (कलकत्ता) के गवर्नर-जनरल को समस्त देश के हिसाब की देख-रेख का अधिकार मिल गया। सन् १८५७ ई० की राज्यक्रान्ति के पश्चात् मितव्ययिता की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव होने लगी और विलसन साहब भारत सरकार के प्रथम अर्थ मंत्री बनाए गए। सन् १८७१ ई० तक अकेले भारत-सरकार को ही धन-प्रबन्ध के सब अधिकार रहे; जितना रुपया उचित समझती, वह प्रान्तिक सरकारों को खर्च करने के लिए दे देती। इस स्थिति में प्रान्तिक सरकार आय वसूल करने के काम में कुछ विशेष उत्साह न लेती थीं। उन पर कोई उत्तरदायित्व न था; जितना उन्हें मिलने की आशा होती उससे अधिक वे भारत-सरकार से माँगतीं, और जो-कुछ हाथ लगता, सब खर्च कर डालती थीं।

सन् १८७१ ई० में लार्ड मेओ ने प्रान्तिक सरकारों में उत्तर-दायित्व का भाव उत्पन्न करके, उक्त स्थिति सुधारने की चेष्टा

की। उसने पुलिस, शिक्षा, जेल, सड़क, सरकारी इमारत और औषधालय आदि के कार्य प्रान्तिक सरकारों के सुपुर्द कर दिए। इनके खर्च के लिए इन विभागों की आय तथा कुछ और सालाना रक़म उन्हें दी जाने लगी। इस आय को प्रान्तिक सरकार अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकती थीं; अगर किसी साल कुछ बचत होती तो वह उन्हें आगामि वर्ष व्यय करने के लिए मिल जाती। पश्चात् सन् १८७७ ई० में आय की मदें इस प्रकार विभक्त की गईं कि कुछ मदें भारत-सरकार के हाथ में रहीं, कुछ प्रान्तीय सरकारों के हाथ में और कुछ मदें दोनों में बँटी हुई रहीं। यद्यपि इस में समय समय पर कुछ परिवर्तन हुए, अधिकांश में यही पद्धति सन् १६१६ ई० तक रही।

सन् १६१६ ई० का क़ानून—इस वर्ष के क़ानून से भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों की आय के साधन पृथक् पृथक् कर दिए गए। अब केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय विषयों के लिए, तथा प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय विषयों के लिए खर्च करती है। केन्द्रीय विषय भारत सरकार के परिच्छेद में, और प्रान्तीय विषय प्रान्तीय सरकार के परिच्छेद में बताए जा चुके हैं। विदित हो चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का आय-व्यय केन्द्रीय सरकार के हिसाब में शामिल किया जाता है, कारण, इन के शासन प्रबन्ध का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर ही है।

बजट, या आय-व्यय अनुमान—सरकारी हिसाब के लिए किसी वर्ष की एक अप्रेल से अगले वर्ष की ३१ मार्च तक, एक साल समझा जाता है। इस प्रकार १ अप्रेल १६३६ से ३१ मार्च १६३७ तक के साल को सन् १६३६-३७ ई० कहते

हैं। वर्ष आरम्भ होने के पूर्व, उसके सब आय-व्यय का अनुमान किया जाता है। इसे बजट, बजट-एसटीमेट (Budget Estimate), या आय-व्यय का अनुमान कहते हैं। केन्द्रीय बजट भारतीय व्यवस्थापक मंडल में और प्रान्तीय बजट प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषद् में उपस्थित किया जाता है। इस सम्बन्ध की आवश्यक बातें पहले बताई जा चुकी हैं। आगामी वर्ष का बजट उपस्थित करते समय गत वर्ष के आय-व्यय के अनुमान का संशोधन भी कर लिया जाता है। उस समय लगभग ११ मास का असली हिसाब और साल के शेष समय का अनुमानित हिसाब रहता है। इसे संशोधित अनुमान (Revised Estimate) कहते हैं। कुछ समय पीछे वर्ष भर के आय-व्यय के ठीक अंक मिल जाने पर वास्तविक हिसाब (Accounts) प्रकाशित होता है।

भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों की कुल वार्षिक आय मिल कर लगभग दो सौ करोड़ रुपए होती है, उनका व्यय भी लगभग इतना ही होता है। इस में से लगभग १२० करोड़ की आय और इतना ही व्यय केन्द्रीय अर्थात् भारत सरकार का होता है, और शेष सब प्रान्तों का।

केन्द्रीय आय की मदें—भारत सरकार की आय की मुख्य मदें निम्न लिखित हैं:—

आयात-निर्यात कर, आय कर, नमक कर, अफीम कर, देशी राज्यों से नजराना, सूद, रेल, तार, डाक, टकसाल, सिविल शासन, सिविल निर्माण कार्य, सेना और विविध।

आयात-निर्यात कर—यह केन्द्रीय आय की सब से बड़ी मद है। इससे लगभग प्रति वर्ष ४५ करोड़ रुपए की आय होती

है। यह कर उन चीज़ों पर लगता है, जो यहाँ से बाहर जाती हैं, अथवा अन्य देशों से यहाँ आती हैं। यह कर व्यापारियों से लिया जाता है, जो इसे अपने ग्राहकों से, वस्तु के मूल्य के साथ वसूल करते हैं। पहले इस मद से बहुत कम आय थी, इसका कारण भारत सरकार की मुक्तद्वार व्यापार नीति थी, वह ब्रिटिश कल कारखाने वालों का लिहाज रखते हुए विदेश से आने वाले माल पर कर बहुत कम लगाती थी। योरपीय महायुद्ध के समय तथा उसके बाद सरकार ने अपनी व्यापार नीति में कुछ परिवर्तन किया। इसका हेतु एक तो आय बढ़ाना था, और दूसरा यहाँ के उद्योग धंधों को संरक्षण देना, अर्थात् कर के कारण यहाँ विदेशी वस्तुएँ मँहगी करना, जिससे वे कम बिकें. तथा यहाँ के आदमी उन को यहाँ ही बनाने के लिए उत्साहित हों।

भारतवर्ष में संरक्षण नोति की बहुत माँग है। भारत सरकार ने पिछले दिनों इस दिशा में कुछ कदम बढ़ाया है, पर अभी और बहुत बढ़ने की आवश्यकता है।

आय कर—यह कर सन् १८६० ई० से लगने लगा है। इस समय दो हज़ार रुपये से कम की वार्षिक आय पर यह कर नहीं लगाया जाता ; यह समझा जाता है कि इतनी रकम की, एक परिवार को अपने निर्वाह के लिए आवश्यकता होती है। इस कर की दर समय समय पर बदलती रही है। ज्यों ज्यों आय का परिमाण बढ़ता है, कर की दर बढ़ती जाती है, उदाहरणवत् दो हज़ार से पाँच हज़ार रुपए तक की आय पर प्रति रुपया पाँच पाई हो तो पाँच हज़ार से दस हज़ार रुपए तक प्रति रुपया छः पाई, और इससे अधिक आय पर और अधिक।

कम्पनियों या कोठियों की आय पर इस कर की दर विशेष परिमाण में निर्धारित है। एक खास रक़म से अधिक आय पर अतिरिक्त कर ('सुपर टैक्स') भी लगाया जाता है। भारतवर्ष में सरकार को इस मद्द से आय अपेक्षाकृत कम है, कारण कि यहाँ के अधिकतर निवासी बहुत निर्धन हैं, तथा यहाँ उद्योग-धन्धों और कल कारख़ानों की उन्नति बहुत कम हुई है।

नमक कर—यह कर एक तो बाहर से आने वाले नमक पर लगता है, दूसरे भारतवर्ष में ही बने हुए नमक पर भी वसूल किया जाता है। इस कर की दर प्रति मन प्रायः एक रुपए से ढाई रुपये तक रही है। इस समय यह कर १।) प्रति मन के हिसाब से है। नमक एक जीवनोपयोगी वस्तु है, ग़रीब से ग़रीब आदमी को भी इसकी आवश्यकता होती है; गाय भैंस आदि पशुओं को भी यह दिया जाता है। इसलिए इस कर का भार सर्व-साधारण निर्धन किसानों और मज़दूरों पर बहुत पड़ता है। अधिकतर भारतवासी इसे बिल्कुल हटाने के पक्ष में हैं, जो थोड़े से आदमी सरकारी आय की दृष्टि से इसे रखने में सहमत होते हैं, उनका भी मत है, यह बहुत ही कम परिमाण में रहना चाहिये।

अफ़ीम कर—भारतवर्ष में सरकार को पोस्त की खेती कराने तथा पोस्त के डोडों से अफ़ीम तैयार कराने का एकाधिकार है, अन्य व्यक्ति यह कार्य नहीं कर सकते। पहले अफ़ीम चीन, श्याम आदि देशों को बहुत जाती थी और भारत सरकार को इससे ख़ूब आमदनी होती थी, परन्तु यह आय नैतिक दृष्टि से ठीक न थी, इसका बहुत विरोध हुआ। अब अफ़ीम विदेशों को भेजनी बन्द कर दी गई है, और

यह इसी देश के आदमियों के लिए तैयार कराई जाती है। कुछ अफ़ीम तो औषधियों के काम आती हैं। शेष का सेवन आदमी नशे के लिए करते हैं, अफ़ीम का यह खर्च जितना कम हो, उतना अच्छा है। कर लगाने में यह दृष्टि रखना बहुत आवश्यक होता है।

अन्य आय—सरकार को कुछ आय देशी राज्यों से प्राप्त नज़राने से भी होती है, यह पुरानी संधियों के अनुसार लिया जाता है। भारत सरकार प्रान्तीय सरकारों आदि को रुपया उधार देती है, उससे उसे सूद की कुछ आमदनी होती है। रेल, तार डाक और टकसाल आदि से भी कुछ आय होती है, पर यह अधिकांश में उन्हीं कार्यों के प्रबन्ध में खर्च हो जाती है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों की आय भी भारत सरकार की आय में सम्मिलित होती है। सिविल निर्माण कार्य की आय में सरकारी मकानों का किराया तथा उनकी बिक्री आदि से होने वाली आय गिनी जाती है। सैनिक आय में सैनिक स्टोर, पुराने कपड़े, दूध, मक्खन तथा पशुओं की बिक्री की आय सम्मिलित होती है। विविध मद में स्टेशनरी और सरकारी रिपोर्टों की बिक्री आदि की आय का समावेश होता है।

प्रान्तीय आय की मदें—प्रान्तीय आय से अभिप्राय: उन प्रान्तों की आय से है, जिनमें गवर्नरों का शासन है। इस की मुख्य मदें निम्न लिखित हैं :—भूमिकर, आबकारी, स्टाम्प, रजिस्टरी, जंगल, आबपाशी, सड़क और इमारतें, सूद, पुलिस, न्याय, जेल, शिक्षा, स्वास्थ, कृषि, उद्योग आदि।

भूमि-कर या मालगुजारी—यह प्रान्तीय आय की सब

से बड़ी और पुरानी मद है। इस के सम्बन्ध में, ब्रिटिश भारत में तीन तरह का बन्दोबस्त है :—(१) स्थाई प्रबन्ध; बंगाल में, बिहार के ⁵⁄₆ भाग में, एवं आसाम के आठवें और संयुक्त प्रान्त के दसवें भाग में। (२) ज़मींदारी या ग्राम्य प्रबन्ध; संयुक्त प्रान्त में ३० वर्ष और पंजाब तथा मध्य प्रान्त में २० वर्ष के लिए मालगुज़ारी निश्चित कर दी जाती है। गाँव वाले मिल कर इसे चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। (३) रय्यतवारी प्रबन्ध ; बम्बई, सिंध, मद्रास, आसाम और बर्मा में, एवं बिहार के कुछ भाग में। इन स्थानों में सरकार सीधे काश्तकारों से सम्बन्ध रखती है। बम्बई, मद्रास में ३० वर्ष में तथा अन्य प्रान्तों में जल्दी जल्दी बन्दोबस्त होता है। नये बन्दोबस्त में प्रायः हर जगह सरकारी मालगुज़ारी बढ़ जाती है। सरकारी मालगुज़ारी नकदी के रूप में ली जाती है, जिन्स (उपज) के रूप में नहीं। अति वृष्टि या अनावृष्टि आदि से फसल खराब हो जाने पर जब पैदावार कम हो जाती है, तो मालगुज़ारी का कुछ अंश छोड़ने का नियम है। परन्तु प्रायः यह शिकायत रहती है कि यह छूट नुकसान के हिसाब से कम होती है, और वैसे भी मालगुज़ारी वास्तविक उपज की दृष्टि से, अधिक ही ली जाती है। भारतीय किसानों की दरिद्रता का एक मुख्य कारण यही बताया जाता है। अतः अनेक व्यक्तियों का मत है कि जिस प्रकार अन्य आय पर कर लगता है, उसी प्रकार कृषि की आय पर भी कर लगा दिया जाया करे।

आबकारी—सरकार को यह आय शराब, गाँजा, भंग, चरस आदि मादक द्रव्यों के बनाने और बेचने से होती है। इसकी दिनों दिन बढ़ती ही हो रही है। गत कुछ वर्षों में ही

यह दुगुनी हो गई है। सरकारी तौर पर यह बताया गया है कि इस आय-वृद्धि का कारण उक्त पदार्थों का अधिक सेवन नहीं है, वरन् यह है कि अब अधिक निगरानी रखी जाती है और जनसंख्या बढ़ती जा रही है। इस विभाग को जनता की सामाजिक और नैतिक स्थिति की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

स्टाम्प—यह दो प्रकार का होता है, अदालती और गैर-अदालती। अदालतों में पेश होने वाली दरख्वास्तों, दस्तावेज़ों तथा आवश्यक कागज़ों पर स्टाम्प लगता है, तथा व्यापार और उद्योग धंधे सम्बन्धी कागज़ों पर—हुँडी पर्चे आदि पर—भी स्टाम्प लगाया जाता है। अदालती स्टाम्प से होने वाली आय प्रत्यक्ष रूप से न्याय पर कर है, गैर-अदालती स्टाम्प की आय भी कुछ परोक्ष रूप से न्याय-कर ही है। रुपया लेने की रसीद पर, तथा हुँडी आदि पर स्टाम्प इस लिए ही लगाया जाता है कि यदि पीछे कोई वाद-विवाद हो तो मुकद्दमे के अवसर पर प्रमाण रहे। इस प्रकार स्टाम्प की आय जितनी अधिक होगी, उतना ही यह समझा जायगा कि लोगों को न्याय प्राप्त करने के लिए खर्च अधिक करना पड़ा।

रजिस्टरी—इसमें पुराने क़ानूनी कागज़ों की नकल, तथा रहननामे या बयनामे आदि की दस्तावेज़ों की रजिस्टरी की फ़ीस शामिल है। रजिस्टरी के लिए हर एक ज़िले में दफ़्तर है।

जंगल की आय—यह आय जंगल की लकड़ी, तथा घास गोन्द आदि अन्य पैदावार की बिक्री से होती है। जंगलों की रक्षा करने, उन्हें नष्ट होने से बचाने के विचार से जंगल

विभाग सन् १८६१ ई० में स्थापित हुआ। इसके प्रबन्ध का उद्देश्य यद्यपि आय न होकर केवल प्रजा-हित ही है, तथापि इससे सरकार को आय होती है। गत वर्षों में जंगल की आमदनी काफ़ी बढ़ गई है। इस विभाग से प्रजा को इतनी असुविधा भी है कि कुछ स्थानों में लोगों को पशु चराने के लिए यथेष्ट भूमि नहीं मिलती, तथा लकड़ी के अभाव में, गोबर (कंडे) जलाए जाने के कारण, खेतों में खाद की कमी हो जाती है।

आबपाशी—यह आय उन खेत वालों से होती है जो सिंचाई के लिए सरकारी नहरों और तालाबों का पानी लेते हैं, या उस से लाभ उठाते हैं। आबपाशी का महसूल, जिस प्रकार की फ़सल हो, तथा जितना क्षेत्रफल हो, उसके हिसाब से ठहराया जाता है। भारतवर्ष में नहरों आदि की क्रमशः वृद्धि हो रही है, पर अभी उनके बढ़ने की बहुत आवश्यकता है। नहरों की वृद्धि से आबपाशी की आय तो बढ़ती ही है, इससे कृषि की उपज बढ़ने के कारण सरकार को मालगुज़ारी भी अधिक मिलती है। हाँ, आबपाशी की दर यथा-सम्भव कम रहे और किसानों को पानी ठीक समय पर मिले तब ही उनका यथेष्ट हित-साधन हो सकता है।

अन्य विषय स्पष्ट हैं, उनके सम्बन्ध में कुछ बातें आगे कही जायँगी। अस्तु, सरकारी आय की मुख्य मुख्य बातों का विचार हो चुका, अब व्यय की बात लेते हैं। पहले केन्द्रीय व्यय का विषय लिया जाता है।

केन्द्रीय व्यय—केन्द्रीय व्यय की मुख्य मदें निम्न लिखित हैं :—

कर वसूल करने का खर्च, सूद, सेना, सिविल निर्माण कार्य, सिविल शासन, डाक, तार, रेल आदि।

कर वसूल करने के ख़र्च में आयात-निर्यात कर, आय-कर, मालगुज़ारी, स्टाम्प, जंगल, रजिस्टरी, अफ़ीम, और आबकारी आदि विभागों के ख़र्च के अतिरिक्त, अफ़ीम और नमक तैयार करने का ख़र्च भी सम्मिलित है।

सेविंग बैंकों या प्रोविडेन्ट फ़ंड की जिन रक़मों पर सरकार सूद देती है, उनके अस्थाई ऋण के अतिरिक्त, भारत सरकार को भारतवर्ष के सरकारी (पब्लिक) ऋण पर सूद देना होता है। इस ऋण की मात्रा सन् १९३५ ई० में १२३६ करोड़ रुपए थी, इसमें से ७२२ करोड़ का ऋण भारतवर्ष और शेष इंगलैंड में लिया हुआ था। कुल ऋण में से १०३३ करोड़ रुपए का ऋण ऐसा है, जिस के बदले में किसी न किसी प्रकार की सम्पत्ति विद्यमान है। ७५७ करोड़ रुपए तो रेल में ही लगे हुए हैं। इस का सूद रेल की मद्द में दिखाया जाता है। यह सन् १९३५ ई० में ३३ करोड़ रुपया था। रेल और नहर आदि की रक़म को छोड़ कर शेष रक़म का सूद ऋण के सूद की मद्द में दिखाया जाता है। भारत सरकार को प्रति वर्ष १५, १६ करोड़ रुपए तक सूद देना होता है। यह सूद सन् १९३५ ई० में १३ करोड़ था।

केन्द्रीय सरकार का सब से अधिक खर्च सेना की मद्द में होता है। महायुद्ध के पूर्व यह खर्च प्रतिवर्ष ३२ करोड़ रुपए था। महायुद्ध के बाद यह बढ़ कर ७० करोड़ से भी अधिक हो गया। उस के बाद इसे घटाने का विचार हुआ; सन् १९३५ ई० में यह ५० करोड़ था। भारतीय नेताओं के मत से यहाँ

की आय की तुलना में यह भी बहुत अधिक है, इसे बहुत कम करने की आवश्यकता है। इसके सम्बन्ध में विशेष सेना के परिच्छेद में लिखा जायगा।

अन्य विषयों के सम्बन्ध में विशेष वक्तव्य नहीं है। जैसा कि पहले सूचित किया गया है, केन्द्रीय खर्च में चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों में होने वाला सब शासन व्यय शामिल होता है।

प्रान्तीय व्यय—प्रान्तीय व्यय से अभिप्राय गवर्नरों के प्रान्तों के व्यय से है। इस व्यय की मुख्य मदें निम्न लिखित हैं :—

कर वसूल करने का खर्च, शासन व्यवस्था, न्याय, जेल, पुलिस, शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ, कृषि, उद्योग, सिविल निर्माण कार्य आदि।

शासन व्यवस्था में गवर्नर, उसकी प्रबन्धकारिणी कौंसिल के सदस्य, मंत्री, कमिश्नर, कलेक्टर और डिप्टी कलेक्टर और, तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार आदि का वेतन, तथा व्यवस्थापक परिषदों, और अन्य विविध दफ़तरों का ख़र्च एवं अधिकारियों के दौरे आदि का खर्च सम्मिलित है। अन्य मदों के विषय स्पष्ट हैं, कुछ के सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा।

हिसाब और उसकी जाँच—ऐसा नियम है कि प्रत्येक सरकारी विभाग का हिसाब ठीक ठीक रखा जाय, और उसकी भिन्न भिन्न शाखाओं तथा उपशाखाओं के हिसाब की समय समय पर जाँच की जाय।

केन्द्रीय हिसाब 'हिसाब-विभाग' रखता है। इस का प्रधान एकाउन्टैंट और आडिटर जनरल होता है। प्रान्तीय

सरकारों का हिसाब प्रान्तीय एकाउन्टैंट जनरल रखते हैं। प्रायः प्रत्येक ज़िले के प्रधान नगर में इम्पीरियल बैंक की शाखा है, उसमें सरकारी आय जमा होती रहती हैं, आवश्यकतानुसार उसी में से खर्च किया जाता हैं। उसका हिसाब बैंक के अतिरिक्त ज़िले के खजाने में भी रहता है। एकाउन्टैंट और आडीटर जनरल का स्टाफ जिले के खजानों के हिसाब का निरीक्षण करता है।

दसवाँ परिच्छेद
सेना

—: * :—

यह संसार कैसा सुखमय हो, यदि चहुँ ओर शान्ति का साम्राज्य हो, कोई जाति या देश स्वार्थ के बशीभूत होकर दूसरे पर अन्याय और अत्याचार न करे, तथा सब परस्पर में प्रेम और मित्रता का व्यवहार करें। परन्तु ये सब भविष्य की आशाएँ हैं। इस समय किसी को तो यह लगन लगी हुई है कि अवसर पाते ही दूसरे का धर दबावे और अनेक को यह चिन्ता सता रही है कि अपनी रक्षा का समुचित प्रबन्ध रखें। इस प्रकार इच्छा से हो चाहे अनिच्छा से, सेना सभी राष्ट्र रखते हैं। भारतवर्ष में सेना अति प्राचीन काल में भी रहने के प्रमाण मिलते हैं।

सेना के भेद—वर्तमान काल में सेना तीन प्रकार की होती हैः—(क) स्थल सेना। इसके सैनिक संगीन, तलवार,

बन्दूक और तोपों से लड़ते हैं। (ख) जल सेना। इसकी शक्ति लड़ाकू जहाजों से जानी जाती है। यह तोपों और जल-मग्न नौकाओं (टारपीडों) से लड़ती है। (ग) आकाश-सेना इसकी शक्ति की कल्पना आकाश-यानों से की जाती है। यह ऊपर से बम या गोले बरसा कर लड़ती है। यह सेना नवयुग की ही सृष्टि है, अभी इसे स्वतंत्र रूप नहीं मिला परन्तु भविष्य में यह अपनी बड़ी बहिनों से भी अधिक महत्व प्राप्त करने वाली है।

यद्यपि भारतवर्ष प्रायद्वीप है, परन्तु इस पर अब तक के समस्त आक्रमण स्थल मार्ग से ही होने के कारण, यहाँ स्थल-सेना को ही महत्व दिया जाता है। जल सेना और आकाश सेना इसी के अन्तर्गत हैं।

स्थल-सेना की आरम्भिक स्थिति—हिन्दुस्थानियों को पलटनों में भर्ती करके योरपीय ढंग से लड़ना सब से प्रथम फ्रान्स वालों ने ही सिखाया था। पश्चात् अंग्रेज़ों ने उनका अनुकरण किया। सन् १७४६ ई० में फ्रांसीसियों से कम्पनी की बस्तियों की रक्षा हेतु मेजर लौरेन्स ने भारतीय सिपाहियों से काम लिया। सन् १७८१ ई० में पार्लिमेंट के ऐक्ट से ईस्ट इंडिया कम्पनी को सिपाही भरती करने और फ़ौज रखने का अधिकार मिल गया, और बम्बई, बंगाल, मद्रास अहातों में अलग अलग सेनाएँ रहने लगीं। इनके अतिरिक्त देशी रियासतें भी अपने अपने खर्च से पलटनें रखती थीं। तोपख़ाना बहुधा भारतीयों के ही हाथ में रहता था।

वर्तमान स्थिति; स्थाई सेना—अब सेना प्रान्तीय सरकारों के अधीन पृथक् पृथक् नहीं रहती, वरन् समस्त सेना

भारत सरकार की निगरानी में रहती है। कुछ सेना तो पूर्व और पश्चिम के सीमा-प्रान्तों में रहती है, और कुछ जहाँ-तहाँ छावनियों में, जहाँ से आवश्यकता होने पर सुगमता-पूर्वक इकट्ठी की जा सके। सन् १८५७ ई० की राज्य क्रान्ति से पूर्व, सेना में योरपियनों की संख्या प्रायः पाँचवाँ हिस्सा होती थी, अब वे एक-तिहाई रहते हैं। अब तोपखाना भारतीयों के हाथ में न रह कर अंगरेजों के हाथ में रहता है। भारतवर्ष में कुल नियमित (रेग्यूलर) या स्थाई सेना में लगभग ढाई लाख सैनिक तथा अफ़सर हैं। ऊँचे पद वाले अफसर अधिकतर अंगरेज होते हैं।

सहायक सेना--रेग्युलर सेना के अतिरिक्त और भी सेना है, वह सहायक (आग्ज़िलियरी) कहलाती है। इसके निम्नलिखित भेद हैं :—

देशी रिजर्व सेना। इसमें वे भारतीय होते हैं, जो निर्धारित समय तक नौकरी कर चुकते हैं, और पश्चात् आवश्यकता होने पर लड़ने के लिए बुलाये जा सकते हैं।

ब्रिटिश सहायक सेना। इसमें योरपियन ब्रिटिश प्रजा के आदमी होते हैं, ये सैनिक शिक्षा पाकर अपना निजी कार्य करते रहते हैं, और आवश्यकता होने पर शस्त्र ग्रहण करके सैनिक कार्य में योग देते हैं। इसके अतिरिक्त सहायक सेना में 'इंडियन टेरिटोरियल फोर्स' और 'इंडियन स्टेट फोर्सेज' नामक सेना होती है।

इंडियन टेरिटोरियल फोर्स--इंडियन टेरिटोरियल फोर्स अर्थात् भारतीय प्रादेशिक सेना तीन प्रकार की होती है :—(१)

किसी प्रान्त विशेष की (२) किसी नगर विशेष की, और (३) 'यूनीवर्सिटी ट्रेनिंग कोर'। 'इंडियन टेरिटोरियल फोर्स' का संगठन योरपीय महायुद्ध के समय से हुआ है। इसका उद्देश्य यह है कि कुछ भारतवासी अपना अन्य कार्य करते हुए, निर्धारित समय तक सैनिक शिक्षा प्राप्त करलें। विश्व विद्यालयों के विद्यार्थी अपने अध्ययन काल में सैनिक शिक्षा पा सकें, इसके लिए भी व्यवस्था की गई है। ये अपने कालिज या विश्वविद्यालय की 'टुकड़ी' या टोली में नाम दर्ज करा लेते हैं। विश्वविद्यालय में शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद ये सैनिक सेवा करने के दायित्व से मुक्त हो जाते हैं, जब कि अन्य व्यक्तियों को सैनिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद निर्धारित समय तक सैनिक सेवा करनी होती है। सैनिक शिक्षा प्राप्त करने और सैनिक सेवा करने के दिनों में प्रत्येक व्यक्ति को निर्धारित रक़म मिलती है।

'इंडियन स्टेट फोर्सेस'—इसे पहले 'इम्पीरियल सर्विस ट्रुप्स' कहा जाता था। इसमें वह सेना है जिसे कुछ बड़े बड़े देशी राज्य स्वयं भरती करते हैं, और अपने खर्च से रखते हैं। इसकी शिक्षा और कवायद ब्रिटिश अफ़सरों की देख रेख में होती है। आवश्यकता होने पर देशी राज्य इस सेना से भारत सरकार की सहायता करते हैं।

जल सेना—भारतवर्ष तीन तरफ़ समुद्र से घिरा हुआ है। प्राचीन काल में समुद्र स्वतः देश-रक्षक हुआ करता था और इसलिए तब जल सेना की विशेष योजना नहीं करनी पड़ती थी। परन्तु १६ वीं शताब्दि से पाश्चात्य राष्ट्रों ने नाविक विद्या में प्रवीणता प्राप्त की, और अपनी जल सेना बढ़ाई। अब विशेष

आक्रमण की आशंका समुद्र की ओर से रहने लगी है और जल सेना की व्यवस्था करनी आवश्यक हो गई है।

भारतवर्ष की आधुनिक जल सेना यहाँ की स्थल सेना से पहले की है। इसका कारण यह है कि अंग्रेज़ इस देश में समुद्र मार्ग से ही आए थे, और जल सेना बिना वे हालैन्ड और पुर्तगाल वालों से, तथा लुटेरों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे। जल सेना का काम सैनिक, तथा युद्ध का सामान लाना ले जाना, समुद्र में पहरा देना, समुद्री डाकुओं का दमन, बन्दरगाहों की रक्षा, और समुद्री नाप जोख करना है। पहले भारतवर्ष, ब्रिटिश सरकार को, उसकी जल सेना की सेवा के लिए प्रति वर्ष कुछ धन देता था। सन् १९२६ ई० से भारतवर्ष की 'शाही जल सेना, सङ्गठित की गई है। इसके कर्मचारियों में केवल एक-तिहाई भारतवासी हैं।

वायु सेना—वायु सेना 'रायल एअर फ़ोर्स' कहलाती है। इसके संचालक को 'एअर कमोडोर' कहते हैं। यह प्रधान सेनापति को परामर्श देने वाली सभा का सदस्य होता है। हवाई जहाज़ों पर बैठ कर उड़ने की शिक्षा देने के लिए कुछ स्थानों में 'मिलिटरी फ्लाईङ्ग स्कूल' खोले गए हैं। भारतवर्ष में वायु सेना का उपयोग अधिकतर पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में होता है।

सेना का कार्य--सेना का मुख्य कार्य देश की बाहर के आक्रमण-कारियों से रक्षा करना है। इसलिए पश्चिमी सीमा के क्वेटा और पेशावर आदि सीमा के स्थानों पर काफी सेना रहती है। आवश्यकतानुसार अन्य स्थानों से भी सेना वहाँ मंगाई जा सकती है। सीमा की रक्षा के अतिरिक्त, सेना

आन्तरिक शान्ति के लिए भी काम आती है, और इस हेतु वह स्थान स्थान पर छावनियों में रखी जाती है। साधारणतः आन्तरिक शान्ति रखने का कार्य पुलिस का है, पर विशेष दशाओं में, उपद्रव आदि होने पर सेना की सहायता ली जाती है, यहाँ तक कि विशेष आवश्यकता अनुभव होने पर उस स्थान का शासन प्रबन्ध फ़ौजी अधिकारियों को ही सौंप दिया जाता है। यह तो सेना का भारतवर्ष सम्बन्धी कार्य हुआ। कुछ दशाओं में पार्लिमेंट की स्वीकृति होने पर, भारतीय सेना भारतवर्ष के बाहर भी ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए, अथवा ब्रिटिश सरकार की सहायता के वास्ते भी भेजी जाती है। योरपीय महायुद्ध के समय पर, तथा और भी अवसरों पर ऐसा हुआ है।

सैनिक शिक्षा—भारतवर्ष के लिए ब्रिटिश सिपाहियों और अफ़सरों की शिक्षा प्रायः इङ्गलैन्ड में होती है। उसके लिए भारत को ही धन देना पड़ता है। कुछ हिन्दुस्तानियों को भी वहाँ शिक्षा पाने की अनुमति है। यहाँ देहरादून में सैनिक शिक्षा की ऐसी व्यवस्था है कि इङ्गलैन्ड के सेन्ढर्स्ट कालिज में प्रवेश होने के लिए कुछ नवयुवक आवश्यक योग्यता प्राप्त कर सकें। सैनिक शिक्षा सम्बन्धी कुछ बातें 'इन्डियन टेरिटोरियल फ़ोर्स' के प्रसंग में कही जा चुकी हैं।

सेना का प्रबन्ध—समस्त सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी जंगी लाट या कमांडरन चीफ़ कहलाता है। वह भारत सरकार का असाधारण सदस्य होता है। उसे परामर्श देने के लिए एक सभा रहती है। सेना का हेड-कार्टर (या सदर) शिमला है। उसके मुख्य कर्मचारी 'हेड कार्टर्स स्टाफ़' कहलाते हैं।

इस स्टाफ़ के छः भाग होते हैं जो सैनिक शिक्षा, रंगरूटों की भरती, छावनियों के प्रबन्ध, गोले बारूद और फ़ौजी सामान तैयार करने, फ़ौजी इमारतें बनाने तथा सैनिकों की चिकित्सा आदि का कार्य करते हैं।

सैनिक व्यय—भारतवर्ष में वेतन-भोगी सेना ही अधिक है। यहाँ ऐसी व्यवस्था कम है कि सैनिक शिक्षा प्राप्त अन्य ऐसे नवयुवक यथेष्ट संख्या में रहें, जो आवश्यकता पड़ने पर रणक्षेत्र में आवें और मातृ-भूमि की रक्षा करें। स्वराज्य प्राप्ति के लिए इस बात की बड़ी ही ज़रूरत है। पुनः यहाँ के सैनिक व्यय का लक्ष्य केवल भारत-रक्षा ही न होकर एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा, होता है। अंगरेज़ सैनिकों का खर्च भी, भारतीयों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। इन कारणों से यहाँ सैनिक व्यय बहुत होता है। महायुद्ध के बाद तो वार्षिक व्यय सत्तर करोड़ रुपये से अधिक हो चुका है। यह रकम भारत सरकार की आय की आधे से अधिक है। इधर कुछ समय से इसमें कमी हुई है। इस समय भी वार्षिक पचास करोड़ रुपए के लगभग खर्च होता है। बड़ी आवश्यकता है कि इसमें काफ़ी कमी की जाय, जिससे शिक्षा, स्वास्थ, कृषि और उद्योग धन्धों आदि की उन्नति के लिए धन की समुचित व्यवस्था हो सके। बहुत समय से भारतवासियों की यह माँग है कि यहाँ सैनिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो, भारतीय सैनिकों और अफ़सरों की संख्या बढ़ाई जाय, यहाँ तक कि सेना का पूर्णतः भारतीयकरण हो जाय। कहना नहीं होगा कि जितना इस दशा में अधिक कार्य होगा, उतनी ही सैनिक व्यय में कमी होगी, और जनता का संतोष भी बढ़ेगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

पुलिस

—:*:—

जिस प्रकार सेना का कर्तव्य देश को बाहर के शत्रुओं से बचाना है, उसी भाँति पुलिस रखने का अभिप्राय यह होता है कि वह देश के अन्दर शान्ति रखे, और चोर, डाकू आदि अपराधियों की खोज करके उन्हें न्यायालय पहुँचाए।

संक्षिप्त इतिहास—ब्रिटिश सरकार के आगमन के पूर्व प्रत्येक गाँव या शहर अपनी रक्षा का स्वतः प्रबन्ध करता था। शहरों में कोतवाल, व गाँवों में चौकीदार व लम्बरदार नियत थे। जहाँ बड़े बड़े ज़मींदार थे, वहाँ उनके अधीन छोटे किसान यह कार्य सम्पादन करते थे। कम्पनी के समय में ज़मींदारों से यह उत्तरदायित्व का कार्य हटाकर उनके स्थानापन्न योरपियन मजिस्ट्रेट बनाए गए और पुलिस के प्रबन्धार्थ ज़मींदारों पर कुछ कर बढ़ाया गया। प्रत्येक ज़िले में बीस बीस वर्ग मील के थाने बना दिए गए। एक एक थाने पर एक एक दारोग़ा नियत किया गया। दारोग़ाओं का यह अधिकार दिया गया कि वे सरकारी ख़र्च से कुछ कान्सटेबल हथियार-बन्द सिपाही और चौकीदार रख सकें। इस प्रकार वेतन भोगी पुलिस रखने की पद्धति आरम्भ हुई।

वर्तमान संगठन—समय समय पर भिन्न भिन्न प्रान्तों में पुलिस सम्बंधी कई परिवर्तन हुए। इसका वर्तमान संगठन

सन् १८६० ई० के कमिशन की सूचनाओं के आधार पर है और इसमें १६०२ के कमिशन की सूचनाओं के अनुसार कुछ फेर बदल हुए हैं। अब प्रत्येक प्रान्त की पुलिस का एक विभाग है, जिसका प्रधान, इन्स्पेक्टर जनरल कहलाता है। वह साधारणतया इंडियन सिविल सर्विस का मेम्बर होता है। उसके अधीन डिप्टी इन्स्पेक्टर-जनरल होते हैं। ये एक 'रेन्ज' का नियंत्रण करते है, जिसमें आठ दस ज़िले होते हैं। प्रत्येक ज़िले में एक पुलिस सुपरिंटेन्डेन्ट रहता है। यह ज़िले की शान्ति के लिए ज़िला-मजिस्ट्रेट के, तथा अपराधों की खोज और निवारण के लिए डिप्टी इन्स्पेक्टर-जनरल के, अधीन होता है। इसके नीचे एक या अधिक सहायक या डिप्टी सुपरिंटेन्डेन्ट रहते हैं।

प्रत्येक ज़िला तीन चार सर्कलों या हल्क़ों में, और एक हल्क़ा ४, ५ पुलिस-स्टेशन या थानों में, विभक्त रहता है। थानों का औसत क्षेत्रफल २०० वर्ग मील है, इसके अन्तर्गत पुलिस-चौकियाँ होती हैं। प्रत्येक हल्क़ा एक इन्स्पेक्टर के, और थाना सब-इन्स्पेक्टर (थानेदार) के अधीन होता है। सब-इन्स्पेक्टर अपराधों की खोज तथा जाँच करता है, और अपने क्षेत्र की शान्ति का उत्तरदाता है; इन्स्पेक्टर का काम केवल निरीक्षण सम्बन्धी है। सब-इन्सपेक्टर के नीचे एक हैड-कान्स्टेबल और कई कान्स्टेबल रहते हैं। शहरों में एक एक कोतवाल भी होता है।

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और रंगून में पृथक् पृथक् पुलिस, कमिश्नरों तथा उनके दो या अधिक सहायकों के अधीन, रहती है। बड़े शहरों में सड़कों की भीड़ का प्रबन्ध करने के लिए गोरी पलटनों के जवान नियुक्त होते हैं, जो सार्जेन्ट कहाते

हैं। रेलवे पुलिस का संगठन पृथक् है। इसका ज़िला-पुलिस से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पुलिस के आदमी स्टेशनों पर काम करते हैं, तथा रेलगाड़ियों में मुसाफ़िरों के साथ जाते हैं।

गाँवों में पुलिस का काम चौकीदार करते हैं। जब वहाँ कोई चोरी आदि हो जाती है, तो चौकीदार उसकी सूचना थाने में करता है। थानेदार उसकी आवश्यक जाँच तथा प्रबन्ध करता है।

खुफ़िया पुलिस—प्रत्येक प्रान्त में राजद्रोह, षड्यन्त्र, जालसाज़ी, नक़ली सिक्का बनाने, या डकैती आदि के बड़े अपराधों की खोज के लिए सी. आई. डी. (Criminal Investigation Dept.) या खुफ़िया पुलिस नामक विभाग रहता है। (अन्य पुलिस की वर्दी की तरह इसकी कोई विशेष वर्दी नहीं होती)। इसका प्रधान एक योरपियन अफ़सर होता है, जिसका दर्जा डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल के समान होता है। इसके अधीन कुछ इन्स्पेक्टर और सब-इन्स्पेक्टर होते हैं। इस पुलिस का जन साधारण पर बड़ा आतंक जमा हुआ है; अनेक बार भोले भाले निर्दोष आदमी भी, केवल शंका के आधार पर, इसके चंगुल में फँस जाते हैं।

पुलिस का काम—ज़िला-पुलिस के दो भाग हैं, सशस्त्र और अशस्त्र। सशस्त्र पुलिस के काम ख़ज़ाने का पहरा देना, ख़ज़ाने और क़ैदियों के साथ जाना, रात को गश्त लगाना और पहरा देना तथा डाकुओं के दल पर चढ़ाई करना है। इसलिए उसे फ़ौजी ढंग पर क़वायद करना और गोली चलाना सिखाया जाता है। बर्मा, आसाम और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में फ़ौजी पुलिस विशेष रूप से रखी जाती है। अशस्त्र पुलिस के काम

जुर्माना वसूल करना, सम्मन या वारंट की तामील करना, सड़कों की भीड़ का बन्दोबस्त करना, आवारा कुत्तों को मार डालना, आग बुझाना, और अपराधियों की गिरफ्तारी या जाँच करना, है। मामूली मामलों में इन्स्पेक्टर या सब-इन्स्पेक्टर पैरवी करता है; यदि मुक़द्दमा सङ्गीन होता है तो सरकारी वकीलों के परामर्श से काम किया जाता है। अपराधियों के पकड़ने के सिवा, पुलिस का काम अपराध रोकना भी है। इसलिए वह पुराने अपराधियों और सन्देह-जनक पुरुषों पर दृष्टि रखती है। थानों में बदमाश, गुण्डों और दाग़ियों का रजिस्टर रखा जाता है।

अन्य बातें—भारतवर्ष में थानों या पुलिस-स्टेशनों की संख्या दस हज़ार के करीब है। बर्मा सहित, सब प्रान्तों की पुलिस में लगभग दो लाख आदमी हैं। इनका वार्षिक व्यय प्रायः ग्यारह करोड़ रुपए है। इस प्रकार प्रत्येक बड़े प्रान्त का औसत पुलिस खर्च लगभग सवा करोड़ रुपए है। गत वर्षों में सुधार के लिए खर्च काफ़ी बढ़ा है। परन्तु प्रजा का पुलिस पर अब भी विश्वास नहीं है। जन साधारण की उससे सहानुभूति तो दूर रही, उलटा वे उसे देख कर ही घबरा जाते हैं। इसका कारण यह है कि अधिकांश पुलिस कर्मचारी अपने आप को प्रजा-सेवक न समझ कर, प्रजा को ही अपना सेवक समझते हैं, और अधिकार-मद में रहते हैं। पुलिस विभाग का समुचित सुधार करने की बड़ी आवश्यकता है। जनता को इनसे, भय-भीत न होकर, आवश्यक काम लेना चाहिये, तथा अपराधियों की खोज और गिरफ्तारी में इनसे सहयोग करना चाहिये।

बारहवाँ परिच्छेद

न्याय और जेल

—: * :—

पुलिस अपराधियों को केवल तलाश और गिरफ़्तार कर सकती है; अभियुक्तों का विचार करने तथा अपराधी को दंड देने का काम न्यायालयों का है, जो राज्य के क़ानून के अनुसार उनका निर्णय करते हैं।

भारतवर्ष में अंगरेज़ी क़ानून—भारतवर्ष का केवल बम्बई ही एक ऐसा स्थान है, जिस का शासन-अधिकार कम्पनी को ब्रिटिश सम्राट् से मिला था; अन्य समस्त प्रदेश उसे भारतवर्ष के ही शासकों से प्राप्त हुए थे। अतः यह अनुमान होना सहज है कि कम्पनी ने इस देश की प्रचलित न्याय पद्धति से ही काम लिया होगा। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। कम्पनी की भिन्न भिन्न सनदों से उसको (शासन के अतिरिक्त) न्याय के अधिकार मिलते गए। और उसके कर्मचारियों की यह धारणा रही कि कम्पनी अपने साथ साथ इंगलैंड का राष्ट्रीय क़ानून भी लाई है; जहाँ अंगरेज़ों का राज्य हो उनका ही क़ानून अमल में आना चाहिये।

सन् १६६१ ई० में कम्पनी को जो सनद मिली उससे कौन्सिल-युक्त गवर्नर कम्पनी के अधीन स्थानों में अंगरेज़ी क़ानून का व्यवहार करने लगे। १७२६ में प्रेसिडैन्सियों में मेयर*

---

*यह म्युनिसिपल प्रबन्ध सम्बन्धी प्रधान अधिकारी होता है।

की अदालतें स्थापित हुईं। इन्हें दीवानी के सब मामलों का फैसला करने के अधिकार था। पीछे बंगाल की अवस्था ठीक न होने से, तथा कम्पनी को दीवानी मिल जाने से क्रमशः फ़ौजदारी मामलों में भी कम्पनी का हस्तक्षेप हुआ। सन् १७७३ ई० में कलकत्ते में (और पीछे मदरास और बम्बई में) सुप्रीम कोर्ट स्थापित हुआ, उससे अंगरेज़ी क़ानून का प्रचार और बढ़ गया। कुछ साल पश्चात् पार्लिमेंट को यह अनुचित प्रतीत हुआ कि अंगरेज़ी जज यहाँ अंगरेज़ प्रजा के साथ साथ, हिन्दू मुसलमानों का भी विलायती क़ानून से ही न्याय करें। इसलिए उसने १७८१ में यह नियम कर दिया कि विवाह शादी, वारिस होने तथा शर्तनामे आदि के, मुसलमानों के मुक़द्दमों का मुसलमानी शरह से, और हिन्दुओं के मुक़द्दमों का हिन्दू शास्त्रानुसार फ़ैसला हो, और जहाँ वादी प्रतिवादी भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी हों, वहाँ प्रतिवादी के धर्म शास्त्रानुसार निर्णय किया जावे। तब से यह विचार रहता है कि प्रजा के आचार व्यवहार में विशेष हस्तक्षेप न किया जाय। शास्त्रों में जिन विषयों का उल्लेख नहीं है, उन्हीं के लिए क़ानून बनते हैं। हाँ, नयी सभ्यता के विचार से सती दाह का क़ानून, तथा गुलामी की प्रथा हटाने और विधवा विवाह सम्बन्धी क़ानून जैसे नियम बनाए जाते हैं।

वर्तमान व्यवस्था—भारतवर्ष में किस क़ानून से मुक़द्दमों का फ़ैसला किया जाय, यह विचार बहुत दिनों तक होता रहा। सन् १८३३ ई० में कलकत्ते में एक "ला कमिशन" बैठाया गया, जिसका उद्देश्य न्यायालयों, उनकी कार्य्य पद्धति और क़ानून का अनुसंधान करना था। इस कमिशन ने 'पीनल कोड' (ताज़ीरात हिन्द या फ़ौजदारी दंड विधान) तैयार

किया। सन् १८५३ ई० में दूसरा कमीशन इंगलैंड में बैठा। इस कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार 'सिविल प्रासीजर कोड' (दीवानी कार्य विधान) और 'क्रिमिनल प्रासीजर कोड' (फ़ौजदारी कार्य विधान) पास हुए।

सैनिकों से फ़ौजी क़ानून के अनुसार—अंगरेज़ सैनिकों से इंगलैंड के फ़ौजी क़ानून के अनुसार, और भारतीय सिपाहियों से गवर्नर-जनरल के बनाए हुए फौजी क़ानून के अनुसार—व्यवहार होता है।

हाईकोर्ट—सन् १८६१ ई० के क़ानून से कलकत्ता, मद्रास, बम्बई में और पीछे इलाहाबाद में हाईकोर्ट स्थापित हुआ। अब से, सुप्रीम कोर्ट तथा दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें हटा दी गई। बिहार-उड़ीसा को १९१४ में हाईकोर्ट मिला। पंजाब का चीफ कोर्ट सन् १९१९ ई० में हाईकोर्ट बना। अब नागपुर में, मध्यप्रान्त का हाईकोर्ट बन गया है। सन् १८६१ ई० के क़ानून के अनुसार हाईकोर्ट में एक 'चीफ जस्टिस' (प्रधान जज) और १५ तक जज रहा करते थे। अब, सन् १९११ ई० के क़ानून के अनुसार, इसके जजों की संख्या बीस तक हो सकती है। फ़ौजदारी मुक़द्दमों में नौ जजों की 'जूरी' से फ़ैसला होता है, और क़ैद, जुर्माने, फांसी, या देश-निकाले आदि की विविध सज़ाएँ हो सकती हैं। जजों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती है, उनकी वेतन और पेन्शन आदि के नियम भारत मन्त्री ने बनाए हैं; और वही उनका संशोधन कर सकता है। इस प्रकार, हाईकोर्ट भारत सरकार के अधीन नहीं हैं। हाईकोर्टों के क्षेत्र और अधिकार क़ानून से निश्चित हैं, और सम्राट् की आज्ञा से ही उन में परिवर्तन हो सकता है।

हाईकोर्ट को दीवानी, फ़ौजदारी आदि सभी प्रकार के मुकद्दमों का फ़ैसला करने का अधिकार होता है। उस में दो भाग होते हैं. 'आरिजिनल' और 'अपीलेन्ट'। आरिजिनल भाग में मुकद्दमा प्रारम्भ होता है, और अपीलेट भाग में अपील सुनी जाती है। प्रायः आरिजिनल भाग में, हाईकोर्ट वाले नगर की सीमा से बाहर के मुकद्दमों का फ़ैसला नहीं किया जाता।

हाईकोर्ट अपनी सीमा की सब दीवानी और फ़ौजदारी अदालतों का नियंत्रण तथा निरीक्षण करते हैं। प्रान्तिक सरकारों की स्वीकृति से वे उनकी कार्य प्रणाली के नियम बना सकते हैं; 'अटर्नी', अमीन, और मोहर्रिर आदि की फ़ीस का निर्ख ठहरा सकते हैं। वे किसी मुक़द्दमे को या उसकी अपील को एक अदालत से दूसरी, उसके समान या बड़ी, अदालत में बदल सकते हैं। अवध में चीफ़कोर्ट, और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, और सिंध में चीफ़ कमिश्नरों के कोर्ट हैं। इनके अधिकार कुछ वैसे ही हैं, जैसे हाईकोर्टों के।

रेवन्यू कोर्ट—मालगुज़ारी सम्बन्धी सब बातों का फ़ैसला करने के लिए कहीं कहीं रेवन्यू कोर्ट और कहीं कहीं सेटलमेंट (बन्दोबस्त) कमिश्नर हैं। इनके अधीन कमिश्नर मजिस्ट्रेट, तहसीलदार आदि रहते हैं, जिन्हें मालगुज़ारी सम्बन्धी मामलों का फ़ैसला करने का निर्धारित अधिकार है।

दीवानी की अदालतें—हाईकोर्टों के नीचे दीवानी और फ़ौजदारी की अदालतें होती हैं। प्रायः हर एक ज़िले में एक ज़िला-जज होता है, जो वहाँ की सब कचहरियों का नियंत्रण करता है। उसकी अदालत ज़िले में सब से बड़ी दीवानी

अदालत है, जिसमें नीचे की अदालतों के फ़ैसलों की अपील हो सकती है ज़िला-जज के नीचे 'सबार्डिनेट' (Subordinate) जज या सब-जज होते हैं। सब-जज को सद्र-आला भी कहते हैं। इनके नीचे मुन्सिफों का दर्जा है। मुन्सिफों के पास साधारणतः १,०००) रु० तक के मुक़द्दमे पेश होते हैं, सब-जज की अदालत में बड़ी से बड़ी रक़म तक का मामला दायर हो सकता है।

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा कुछ अन्य स्थानों में 'स्माल काज़ कोर्ट' (Small Cause Court) या अदालत खफ़ीफ़ा स्थापित हैं, जो छोटे छोटे मामलों में जल्दी और कम खर्च से अन्तिम निर्णय सुना देती हैं। इन्हें कलकत्ता, बम्बई, और मद्रास में २,०००) रु०, तथा अन्य स्थानों में ५००) रु० तक का मामला सुनने का अधिकार है।

फ़ौज़दारी की अदालतें—प्रत्येक ज़िले में, या कुछ ज़िलों के एक समूह में, एक 'सेशन्स (Sessions) कोर्ट, रहता है। इसका प्रधान भी ज़िला-जज ही होता है, जो फ़ौजदारी के अधिकार रखने से, सेशन जजी का कार्य सम्पादन करता है। उसे अन्य सहकारी सेशन जजों से इस काम में सहायता मिल सकती है। फ़ौजदारी मामले में सेशन्स कोर्टों के अधिकार हाईकोर्टों सरीखे ही हैं। फ़ौजदारी के संगीन मामलों में जज अकेला अपनी मर्ज़ी से ही निर्णय नहीं करता, वह जूरी या असेसरों को भी सलाह लेता है। जूरी या असेसर का काम करने के लिए, कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नामों की सूची तैयार रहती है, इनमें से कुछ बारी-बारी से जज को सहायता देते हैं। जज असेसरों की सम्मति मान्य करने के लिए बाध्य नहीं होता।

मजिस्ट्रेट और उनके अधिकार—सेशन जजों के नीचे प्रथम, द्वितीय, और तृतीय श्रेणियों के मजिस्ट्रेट रहते हैं। बम्बई कलकत्ता और मद्रास में 'प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट,' छावनियों में 'छावनी-मजिस्ट्रेट,' एवं कुछ शहरों में 'आनरेरी' (Honorary) अर्थात् अवैतनिक पहले, दूसरे, या तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट रहते हैं। इनमें से छावनी-मजिस्ट्रेट फ़ौजी अफसर ही होते हैं।

प्रेसीडेन्सी-मजिस्ट्रेटों तथा अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेटों को दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपए तक का जुर्माना करने का अधिकार होता है। जिन मुक़द्दमों का फैसला प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट नहीं कर सकते, उन्हें वे हाईकोर्ट में भेज देते हैं। अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट जिन मुक़द्दमों का फ़ैसला नहीं कर सकते, उन्हें वे सेशन जज के यहाँ भेज देते हैं। दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट छः मास तक की क़ैद और दो सौ रुपए तक जुर्माना कर सकते हैं। तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट एक मास तक की क़ैद और पचास रुपए तक जुर्माना कर सकते हैं। छावनी-मजिस्ट्रेट फ़ौजदारी मामलों का प्रारम्भिक स्थिति में विचार करते हैं। कहीं कहीं छोटे मामलों का निपटारा गाँव के मुखिया ही मजिस्ट्रेट की हैसियत से, कर देते हैं। प्रायः सब प्रान्तों में पंचायतों को कुछ छोटे छोटे दीवानी और फौजदारी मामलों का फ़ैसला करने का अधिकार है।

न्याय और शासन का पृथक्करण—भारतवर्ष में ज़िलाधीश कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर और उनके सहायक, शासन कार्य भी करते हैं, तथा मजिस्ट्रेट की हैसियत से कुछ फ़ौजदारी मामलों का फैसला भी करते हैं। इनका लोगों से बहुत सम्बन्ध रहता है। और इस कारण से इनका किसी के प्रति कृपा-दृष्टि

और किसी के सम्बन्ध कुछ बुरी भावना बना लेना स्वाभाविक है। इसलिए उनका निस्पक्ष रहना कठिन होता है। पुनः ज़िलाधीश अपने ज़िले की शान्ति का उत्तरदाता होता है, अतः पुलिस एक प्रकार से उसके अधीन है; और पुलिस ही बहुत से मुकद्दमे चलाती है। ऐसी दशा में ज़िलाधीश और उसके सहायकों द्वारा पुलिस का पक्ष लेने तथा न्याय ठीक तरह न करने की बहुत सम्भावना होती है। फिर ज़िला-जज आदि सिविल सर्विस के होते हैं और यद्यपि अपने काम में हाईकोर्ट के अधीन हैं, उनका नियुक्त और बरखास्त होना तथा तरक्की पाना सब कुछ शासक विभाग (Executive) के हाथ में ही है। इसलिए भारतीय नेताओं की माँग है कि जितना शीघ्र हो सके शासन और न्याय विभाग पृथक् किए जायँ।

योरपियन ब्रिटिश प्रजा—सन् १८७२ ई० से पहले योरपियन ब्रिटिश प्रजा के अभियुक्तों पर केवल हाईकोर्ट में ही अभियोग चलाया जा सकता था। इससे बहुत असुविधा होने के कारण उनके मुकद्दमों का फैसला करने का अधिकार उन सेशन जजों तथा मजिस्ट्रेटों को भी दिया गया, जो योरपियन हों, हिन्दुस्थानी न हों। लार्ड रिपन के समय में, सन् १८८३ ई० में, सरकार के क़ानून-सदस्य इलबर्ट ने व्यवस्थापक सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिन्दुस्थानी मजिस्ट्रेट भी उन लोगों का मुकद्दमा कर सकें। यह प्रस्ताव इलबर्ट बिल के नाम से प्रसिद्ध है। योरपियनों ने इसका घोर विरोध किया। अन्ततः यह नियम बनाया गया कि यदि कोई हिन्दुस्थानी ज़िला-मजिस्ट्रेट या सेशन जज हो तो वह योरपियनों का मुकद्दमा कर सके, परन्तु अभियुक्त को यह अधिकार होगा कि वह मुकद्दमे

का फ़ैसला ऐसी जूरी द्वारा कराए, जिसमें कम से कम आधे व्यक्ति योरपियन या अमरीकन हों। मांट-फ़ोर्ड सुधारों के बाद पुनः इस विषय पर विचार हुआ, और सन् १९२३ के क़ानून से कुछ संशोधन किया जाकर, योरपियन और हिन्दुस्थानी अभियुक्तों पर मुकद्दमे चलाए जाने की विधि का अन्तर कुछ कम किया गया।

प्रिवी कौंसिल—ख़ास ख़ास हालतों में भारतवर्ष के हाईकोर्ट, चीफ़कोर्ट और जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट के फ़ैसले की अपील इङ्गलैण्ड की प्रिवी कौंसिल में हो सकती है। उसके कुछ क़ानून में निपुण सदस्यों की एक जुडीशल कमेटी अपील सुनती है। इसका निर्णय सम्राट् का निर्णय समझा जाता है, इसकी कहीं अपील नहीं हो सकती। इसमें प्रायः दीवानी ही के मामले पहुँचते हैं, फ़ौजदारी के बहुत कम जाते हैं।

संघ-न्यायालय—सन् १९३५ ई० के विधान से भारतवर्ष में 'संघ-न्यायालय' (फीडरल कोर्ट) नामक सर्वोच्च न्यायालय का आयोजन किया गया है। इसे शासन-विधान के विषयों का अर्थ लगाने का भी अधिकार होगा। इस की संघ और संघान्तरित देशी राज्यों सम्बन्धी बातें, यहाँ संघ की स्थापना होने पर अमल में आएगी।

यह न्यायालय देहली में होगा। इस के प्रधान जज को 'भारतवर्ष का चीफ़ जस्टिस' कहा जायगा, और इस में उस के अतिरिक्त छः तक अन्य जज रहेंगे। इनकी नियुक्ति सम्राट् द्वारा की जायगी। इस न्यायालय के दो भाग होंगे :—आरिजिनल और अपील भाग। संघ, प्रान्तों और देशी राज्यों का परस्पर में क़ानूनी अधिकार सम्बन्धी मत भेद होने पर उस का विचार संघ के आरिजिनल भाग में होगा। अपील भाग में ब्रिटिश भारत के हाईकोर्टों के ऐसे फैसलों की अपील होगी, जिन के विषय में

हाईकोर्ट यह तसदीक कर दे कि उनमें शासन विधान की व्याख्या सम्बन्धी या सपरिषद् सम्राट् की किसी आज्ञा से सम्बन्धित कोई महत्व-पूर्ण प्रश्न आता है।

संघीय व्यवस्थापक मंडल इस न्यायालय को निर्धारित प्रकार के पन्द्रह हज़ार रुपए या इससे अधिक के दीवानी दावों की अपील सुनने का अधिकार दे सकता है और इस बात की भी व्यवस्था कर सकता है कि ब्रिटिश भारत के सब या कुछ दीवानी मामलों की अपील सीधे प्रिवी कौंसिल में न हो। जब तक यह व्यवस्था न हो, संघ न्यायालय के दीवानी फैसलों की भी अपील प्रिवी कौंसिल में होगी, अन्य प्रकार के मामलों के फैसलों की अपील तो उक्त व्यवस्था के बाद भी प्रिवी कौंसिल में हो सकेगी। संघ न्यायालय द्वारा, तथा प्रिवी कौंसिल के फैसलों द्वारा सूचित किया हुआ क़ानून प्रसगानुसार ब्रिटिश भारत के सब न्यायालयों में मान्य होगा।

जेल

अब हम जेलों का वर्णन करते हैं। न्यायालयों द्वारा अपराधी ठहराए हुए व्यक्तियों को दंड स्वरूप, निर्धारित समय तक, बन्दी या क़ैद रखने के लिए जिन मकानों की व्यवस्था की जाती है, उन्हें जेल कहते हैं।

जेलों के भेद—यहाँ जेलों के तीन भेद हैं—(१) सेन्ट्रल जेल, इनमें साल भर या अधिक के क़ैदी रहते हैं। (२) ज़िला-जेल, इनमें पन्द्रह दिन से लेकर साल भर तक के क़ैदी रहते हैं। (३) छोटे जेल या हवालात, इनमें वे आदमी रहते हैं, जिन्हें १५ दिन से कम सज़ा हुई हो या, कुछ दशाओं में, जिन पर मुक़द्दमा चल रहा हो।

जेलों का संगठन—सन् १८६४ ई० से पहले भिन्न भिन्न स्थानों के जेलों के नियम तथा प्रबन्ध आदि में बहुत अन्तर

था। उस वर्ष के ऐक्ट से सब जेलों में सुधार किया गया, और मोटी मोटी बातों में समानता लाई गई। अब प्रत्येक प्रान्तिक सरकार के अधीन एक इन्स्पेक्टर-जनरल रहता है जो अपने प्रान्त के सब जेलों की निगरानी रखता है। ज़िला-जेल के कर्मचारियों के चार भेद होते हैं:— १—सुपरिंटेन्डेंट, जो साधारण प्रबन्ध, ख़र्च, तथा क़ैदियों की मेहनत और सज़ा की निगरानी करता है। २—मेडिकल अफ़सर, स्वास्थ्य आदि का ध्यान रखता है। ३—सहायक मेडिकल अफ़सर, और ४—जेलर। इन में से सुपरिंटेन्डेन्ट और मेडिकल अफ़सर के काम बहुधा एक ही कर्मचारी के सुपुर्द होते हैं। बहुधा ज़िला-जेल तथा कुछ अन्य जेल भी सिविल सर्जनों की ही देख-रेख में रहते हैं। वार्डर्स, अर्थात् जेल के पहरुए और क़ैदी अफ़सर (Convict Officers) का काम अधिकतर अपराधियों से ही लिया जाता है। ज़िला–मजिस्ट्रेट भी बहुधा ज़िला–जेल की देख-भाल करता है।

क़ैदियों का रहन सहन—प्रायः एक एक प्रकार के अपराध के क़ैदी इकट्ठे रहते हैं। राजनैतिक, दीवानी और फ़ौजदारी के क़ैदी तथा बूढ़े और नौजवान (१५ से १८ वर्ष तक की आयु के) क़ैदी, पृथक् पृथक् रखे जाते हैं। इसी प्रकार स्त्रियों को मर्दों से अलग रखा जाता है। सख़्त क़ैद वालों को प्रायः ६ घन्टे काम करना होता है। यद्यपि कभी कभी मिट्टी खोदने आदि के लिए क़ैदी बाहर भी जाते हैं, परन्तु ये अधिकतर जेल के अहाते में ही, जेल की नौकरी या अन्य कार्य (कपड़ा बुनना, मरम्मत करना, आटा पीसना, पानी भरना आदि) करते हैं। जब क़ैदी अपना निर्धारित कार्य नहीं करते, अथवा, जब उनका

व्यवहार अधिकारियों की दृष्टि में उद्दंडता का होता है तो उन्हें शारीरिक दंड भी दिया जाता है। कुछ दशाओं में क़ैदियों के हाथ पाँव में बेड़ियाँ भी डाल दी जाती हैं।

समय समय पर, जेलों की जाँच के लिए कुछ कमेटियाँ नियुक्त हुई हैं। और, उनकी रिपोर्टों के आधार पर क़ैदियों के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन हुए हैं। सन् १९३० ई० से क़ैदियों की, उनकी हैसियत के अनुसार तीन श्रेणियाँ की जाती हैं, 'ए', 'बी' और 'सी'। 'ए' श्रेणी के कैदियों को भोजन वस्त्र आदि की कई प्रकार की सुविधाएँ दी जाती हैं, 'बी' श्रेणी वालों को उनसे कम सुविधाएँ रहती है। 'सी' श्रेणी के कैदी मामूली हालत में रखे जाते हैं, इनकी ही संख्या सब से अधिक होती है।

छोटे अपराधी—पंद्रह वर्ष से कम आयु के बालक या तो किसी सुधार-शाला (Reformatory) में भेजे जाते हैं, जिसमें तीन वर्ष से लेकर सात वर्ष तक शिक्षा पाकर वे किसी उद्योग धन्धे के योग्य हो जायँ, या उन्हें ताड़ना देकर उनके माता पिता को ही सौंप दिया जाता है। क़ैदियों में, लड़कियों की संख्या अल्प है, और, मजिस्ट्रेटों की इस बात की हिदायत रहती है कि जहाँ तक बने, वे अपराधी लड़कियों को धमका कर या समझा कर उनके संरक्षकों के ही सुपुर्द करदें।

काले पानी की सजा वाले—हिन्दुस्थान में जिन लोगों को देश-निकाले की सज़ा जन्म भर के लिए या कम से कम छः वर्ष के लिए होती है, उन्हें अन्दमान टापू में पोर्टब्लेयर स्थान पर भेज दिया जाता है। वहाँ एक सुपरिंटेन्डेन्ट तथा कुछ उसके सहायक कर्मचारी होते हैं। देश-निकाले की सजा पाए हुए आदमी के जीवन में पाँच दर्जे नियत किए गए हैं,

जब वह तरक्की करके एक दर्जे से दूसरे दर्जे में प्रवेश करता है तो उसके काम की सख्ती कम कर दी जाती है। जेल कमीशन ने अन्दमान में कैदी न भेजे जाने की सिफारिश की थी, कुछ समय वहाँ क़ैदी भेजा जाना बन्द रहा, अब पुनः भेजे जाने लगे हैं।

क़ैदियों का सुधार—कहीं कहीं क़ैदियों को रामायण महाभारत आदि की कथा सुनाने का प्रबन्ध होने लगा है। सेन्ट्रल जेलों में, स्कूल और पुस्तकालय खोले जा रहे हैं। तथापि जेलों में क़ैदियों का सुधार बहुत कम होता है। बहुत से साधारण अपराधी वहाँ से पक्के चोर, डाकू या दुराचारी होकर निकलते हैं। इससे सिद्ध है कि जेलों की व्यवस्था ख़राब है। उसमें ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है कि जेल से वापिस आने के पश्चात्, कोई आदमी दुबारा वैसा अपराध न करे।

तेरहवाँ परिच्छेद

कृषि

—:*:—

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के लगभग ७५ फ़ी सदी आदमियों की आजीविका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से खेती के काम से ही चलती है। यद्यपि कुल पैदावार की दृष्टि से भारतवर्ष का संसार के देशों में अच्छा स्थान है, परन्तु क्षेत्रफल तथा जन संख्या के हिसाब से यहाँ की पैदावार, अन्य देशों की

तुलना में बहुत कम है। अतः यहाँ कृषि की उन्नति की बड़ी आवश्यकता है।

कृषि की उन्नति–इस विषय में निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं।

१—यहाँ किसान बहुत ग़रीब तथा ऋण-ग्रस्त हैं। इस लिए बहुत से नये आविष्कारों या सुधारों की उपयोगिता समझ लेने पर भी, वे उन्हें अमल में नहीं ला सकते। सरकार उन्हें कृषि कार्य के लिए कम सूद पर रुपया उधार देती है, जिसे 'तक़ावी' कहते हैं। परन्तु यह सहायता काफी नहीं होती। प्रायः किसानों को साहूकारों की ही शरण लेनी पड़ती है, और वे इनसे बहुत अधिक व्याज लेते हैं। कुछ स्थानों में किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए सहकारी साख समितियों की स्थापना हो रही हैं। इनके सम्बन्ध में आगे (इक्कीसवें परिच्छेद में) लिखा गया है।

२—बंटवारे की प्रथा के कारण. यहाँ अनेक किसानों के पास ज़मीन का छोटा-छोटा टुकड़ा रह गया है। बहुतों की तो कुछ ज़मीन एक जगह है, और कुछ बहुत दूर, दूसरी जगह है। इनकी खेती की देख-रेख करने में बहुत कष्ट तथा खर्च होता है। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि किसी को चार एकड़ से कम ज़मीन न मिले, और जब ऐसा प्रसंग आए भी, तो पूरा खेत सब हक़दारों में नीलाम कर दिया जाय; सब से अधिक रुपया देने वाले को खेत मिल जाय, और दूसरे हक़दारों को, उनके हिस्से के अनुसार रुपया दे दिया जाय। साथ ही प्रत्येक किसान की जोत के खेत यथा-सम्भव एक ही स्थान में, एक चक में, होने चाहिये।

३—किसानों में शिक्षा का प्रचार बहुत कम है। कृषि शिक्षा-के लिए कुछ स्थानों में कृषि-कालिज और स्कूल हैं। परन्तु कालिजों में शिक्षा का माध्यम अंगरेज़ी होने के कारण उनसे समुचित लाभ नहीं पहुँचता। ग्रामीण माध्यमिक पाठशालाओं में किसानों के लड़कों की सुविधाओं और आवश्यकताओं का यथेष्ठ ध्यान रखकर उन्हें कृषि सम्बन्धी और अन्य उपयोगी शिक्षा निश्शुल्क मिलने की आवश्यकता है।

कृषि कमीशन—सन् १९२६ ई० में यहाँ एक शाही कृषि कमीशन नियत हुआ था। अपनी रिपोर्ट में उसने कृषि सम्बन्धी उन्नति, अनुसंधानों, भूमि-विभाग, नुमायशों, पशु-चिकित्सा, आबपाशी, देहाती जीवन, कृषि-शिक्षा, सहकारी शाख सभाओं, और कृषि सम्बन्धी नौकरियों पर अपने विचार प्रकट किए थे। इस रिपोर्ट के आधार पर एक कृषि-कौंसिल बनाई गई है, जिसका कर्तव्य कृषि की उन्नति का विचार करना है।

कृषि विभाग और उसका कार्य—लार्ड कर्ज़न के समय में, भारतवर्ष में एक सरकारी कृषि विभाग स्थापित हुआ। अलग अलग प्रान्तों में कृषि का एक एक डायरेक्टर तथा उसके नीचे डिप्टी डायरेक्टर, ऐसिस्टैंट डायरेक्टर, और इंजिनियर आदि रहते हैं। इस विभाग के प्रयत्नों से भारतीय कृषि के सम्बन्ध में, विशेषतया भिन्न भिन्न प्रकार की ज़मीनों में उचित खादों का उपयोग, अच्छे बीज, पौदों के रोग और उनके निवारण, नयी तरह के औज़ारों के उपयोग, पशु-चिकित्सा और नये तरीक़ों से खेती करने के सम्बन्ध में, कई उत्तम बातों का ज्ञान प्राप्त हुआ है। सर्व साधारण में इस ज्ञान के प्रचार की आवश्यकता है।

चौदहवाँ परिच्छेद

आबपाशी और निर्माण कार्य

—:*:—

आबपाशी की आवश्यकता—पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। अधिकतर आदमियों की आजीविका कृषि से चलती है। और, कृषि-कार्य के लिए पर्याप्त मात्रा में, तथा उचित समय पर जल की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में बहुत कुछ जल तो वर्षा से ही मिल जाता है, किन्तु उसका भरोसा नहीं रहता, कब मिले, और कितना मिले। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि उत्तरी पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में, और मदरास के तट की भूमि में वर्षा कुछ निश्चित नहीं है। और, दक्षिण मालवा, गुजरात, सिंध और राजपूताने में वर्षा बहुत कम होती है। इन स्थानों में आबपाशी की विशेष आवश्यकता है।

आबपाशी के साधन; कुएँ और तालाब—वर्षा के अतिरिक्त, आबपाशी के साधन कुएँ, तालाब, झील, नदी, नहर आदि हैं। मनुष्य-कृत साधनों में कुएँ, तालाब और नहर मुख्य हैं। कुएँ और तालाब तो यहाँ अति प्राचीन काल से हैं, बहुधा धनी-मानी या परोपकारी सज्जन इन्हें आवश्यकतानुसार बनवाते रहे हैं। अधिकतर आबपाशी इनसे ही होती है। इस समय प्रायः कुएँ स्वयं लोगों के बनवाए हुए हैं, हाँ, सरकार ने कुछ दशाओं में उनके लिए सहायता दी है। तालाब जनता तथा सरकार दोनों

के ही द्वारा बनवाए गए हैं। मद्रास के पूर्वी भाग में सिंचाई तालाबों से बहुत की जाती है। वहाँ के कुछ तालाबों का घेरा तो कई कई मील है।

नहरें—नहरों का बनवाना साधारण आदमियों के वश की बात नहीं है। इन्हें तो राजा महाराजा अथवा सरकार ही बनवा सकती है। प्राचीन काल में यहाँ राजाओं ने नहरें बनवाई थीं, मुसलमान बादशाहों के समय की नहरों के चिन्ह तो आधुनिक काल में भी मिले हैं। अस्तु, इस समय ये अधिकांश में सरकार द्वारा बनवाई हुई और उसी के प्रबन्ध में हैं। भारतवर्ष कृषि-प्रधान होने के कारण, जिस साल यहाँ बारिश नहीं होती, अथवा कम होती है, उस साल करोड़ों मनुष्यों के लिए जीवन-निर्वाह की कठिनाई उपस्थित हो जाती है। बार-बार अकाल पड़ने से सरकार ने नहरें बनवाने की ओर ध्यान दिया। उसने यह कार्य सन् १८५४ ई० में आरम्भ किया। सन् १९०३ ई० के आबपाशी-कमीशन की रिपोर्ट के बाद कई नहरें बनवाई गईं। नहरें आबपाशी का सब से बड़ा साधन है। इनके निकल जाने पर अनुत्पादक भूमि भी बहुत सुहावनी हरी भरी तथा ख़ूब आबाद हो जाती है। उदाहरणार्थ पंजाब में नहरें निकलने से कई जगह अच्छी सुन्दर नहरी बस्तियाँ या उपनिवेश (कालोनी) हो गए हैं। इनकी पैदावार तथा आबादी पहले से कई गुनी हो गई है। इनका क्षेत्रफल लगभग ५० लाख एकड़ और यहाँ की वार्षिक पैदावार का मूल्य लगभग ३० करोड़ रुपए हैं।

आबपाशी का प्रबन्ध और विस्तार—आबपाशी के कार्यों के दो भेद हैं। उत्पादक (Productive), जिन से इतनी

आय हो जाय कि उनके चलाने का खर्च तथा उन में लगी पूँजी का सूद निकल सके। (२) अनुत्पादक (Un-productive)। इनसे ऐसी आय नहीं होती कि आवश्यक खर्च निकालने के बाद उस से इनमें लगी हुई पूँजी का पूरा सूद मिल सके। ये कार्य दुर्भिक्ष-निवारण के उद्देश्य से किए जाते हैं।

आबपाशी अब प्रान्तीय विषय है। प्रान्तीय सरकारों को अपने अपने प्रान्त में नहरें आदि बनवाने का अधिकार है। केवल ऐसी बड़ी बड़ी नहरों के लिए जिनमें पूँजी बहुत अधिक लगे, तथा जिनका सम्बन्ध एक से अधिक प्रान्तों से हो, भारत सरकार की अनुमति तथा भारत मंत्री की स्वीकृति लेनी होती है। गत वर्षों से नहरों के कई बड़े बड़े कार्य हो रहे हैं। संयुक्त प्रान्त में शारदा नहर निकाली गई है, जिससे लगभग १४ लाख एकड़ भूमि में आबपाशी होगी। सिन्ध में सक्खर बाँध बनाया गया है, जिससे सिंध की लाखों एकड़ बंजर भूमि हरीभरी और खूब उपजाऊ हो जाने की आशा है।

अस्तु, गत वर्षों में आबपाशी के कार्यों की अच्छी उन्नति हुई है। तथापि अभी इनकी बहुत आवश्यकता है। भारतवर्ष में लगभग २५०० लाख एकड़ भूमि जोती जाती है, इसमें से इस समय केवल पाँचवें हिस्से में आबपाशी होती है; शेष भूमि का आसरा वर्षा हैं। इससे आबपाशी के साधनों की वृद्धि की आवश्यकता स्पष्ट है।

सार्वजनिक निर्माण विभाग—१९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक सार्वजनिक निर्माण कार्य केवल फ़ौजी मकानात सिपाहियों के बारक, सड़कें तथा अन्य सिविल मकानात बनाने तक

ही परिमित था। कुछ पुराने तालाबों, नहरों और घाटों की व्यवस्था भी अवश्य कराई जाती थी, परन्तु अधिकांश ख़र्च फ़ौजी कामों में ही होता था, यहाँ तक कि सार्वजनिक निर्माण विभाग सेना-विभाग का ही एक अंग समझा जाता था, एवं प्रत्येक प्रेसिडेंसी में, उसके सेना-विभाग के ही सुपुर्द यह काम भी रहता था।

सन् १८५५ ई० से सार्वजनिक निर्माण कार्यों में निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हो गए:—(१) रेल, (२) सिंचाई (३) सड़क और मकानात। पीछे निर्माण विभाग सेना-विभाग से पृथक् कर दिया गया। सन् १६०५ ई० से रेलों के लिए पृथक् व्यवस्था की गई। साधारणतया अन्य कार्य अब प्रान्तीय हैं। इनमें आबपाशी के अतिरिक्त ऐसे काम शामिल हैं।—सड़कों को बढ़ाना, नई सड़कें बनवाना और उनकी देख-भाल तथा मरम्मत कराते रहना, सरकारी कामों के वास्ते आवश्यक मकानात—स्कूल, अस्पताल, जेल, दफ़्तर, अजायबघर, अदालतें इत्यादि—बनाना व मरम्मत कराते रहना, तथा सार्वजनिक सुविधा के कार्य करना जिनमें रोशनीघर (Light Houses) बन्दर, घाट, पुल, जलप्रबन्ध, और स्वास्थ्यागारादि सम्मिलित हैं। इस समय साधारण सड़कों और छोटे मकानों के बनवाने का कार्य म्युनिसिपैलिटियों को दिया जाता है, और विशेष महत्व के तथा अधिक व्यय-साध्य कार्य प्रान्तीय सरकार करती हैं। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का प्रायः एक सेक्रेटरी सड़कों और मकानों के लिए, और एक सेक्रेटरी आबपाशी के लिए रहता है। सेक्रेटरी चीफ इंजीनियर होता है। उसके अधीन एक एक सर्कल के सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर होते हैं, और इससे नीचे एक

एक डिविजन के ऐग्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर होते हैं। एग्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर के नीचे क्रमशः ऐसिस्टैंट इंजीनियर तथा ओवरसियर आदि कर्मचारी काम करते हैं। आबपाशी विभाग से सरकार को अच्छी आमदनी होती है; आबपाशी का महसूल भिन्न भिन्न प्रान्तों में अलग अलग हिसाब से लिया जाता है।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

स्वास्थ्य और चिकित्सा

—: * :—

प्रायः मनुष्य अपने अज्ञान, दरिद्रता, दुर्व्यसनों तथा शौकीनी आदि के कारण बीमार पड़ते हैं। भारतवर्ष में शिक्षा की कमी तो है ही; निर्धनता, बाल विवाह, तथा स्त्रियों के पर्दे आदि की सामाजिक कुरीतियाँ भी यहाँ सर्व साधारण के स्वास्थ को भारी आघात पहुँचा रही हैं। निदान, वर्तमान काल में भारतवासियों की औसत आयु लगभग तेईस वर्ष है, जब कि अन्य बहुत से देशों में चालीस वर्ष या इससे अधिक है। इसी प्रकार, यहाँ फ़ी हज़ार आदमियों में से कोई ३० आदमी प्रति वर्ष मर जाते हैं, जब कि संसार के कितने ही देशों में हज़ार पीछे केवल दस ग्यारह ही मरते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ स्वास्थ सुधार की ओर यथेष्ट ध्यान देने की कितनी आवश्यकता है।

प्राचीन और आधुनिक चिकित्सा—प्राचीन काल में यहाँ लोगों का स्वास्थ बहुत उत्तम था, उनका जीवन तथा

रहन-सहन सरल और सादा था। वे बीमार बहुत कम पड़ते थे, तथा दवाइयों का सेवन भी बहुत कम करते थे। पुनः यहाँ वैद्य और हकीम यथेष्ट थे और औषध-शास्त्र में अच्छी उन्नति हो गई थी। पीछे अन्य विद्याओं का प्रचार रुकने के साथ साथ ही, इसकी भी उन्नति क्रमशःस्थगित हो गई। वैद्यक और यूनानी ने नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों से लाभ न उठाया। यही कारण है कि आज दिन यद्यपि उनके पुनरुद्धार की चेष्टा की जा रही है, तथापि पाश्चात्य चिकित्सा (डाक्टरी) पद्धति ही अधिकाधिक जनप्रिय होती जा रही है। सरकार द्वारा भी उसे ही विशेष आश्रय मिल रहा है। हाँ, इधर कुछ वर्षों से वैद्यक और हकीमी की सरकारी एवं गैर-सरकारी परीक्षाएँ होने लगी हैं, तथा योग्यता-प्राप्त कुछ वैद्य और हकीम म्युनिस्पैलिटियों और जिला-बोर्डों की ओर से नियुक्त भी किए जाते हैं। रोगों के इलाज के लिए वैद्य और हकीम जो जड़ी बूटी आदि बताते हैं, वे प्रायः बहुत सस्ती होती हैं, और उन्हें सर्व साधारण सुगमता-पूर्वक खरीद सकते हैं, इसके विपरीत, अंगरेज़ी दवाइयाँ बहुत व्यय-साध्य होती हैं।

स्वास्थ रक्षा का प्रबन्ध—शहरों में म्युनिसिपैलटियों के उद्योग से स्वास्थ सम्बन्धी कई प्रकार के कार्य हो रहे हैं। बड़े क़स्बों या शहरों में सफ़ाई का डाक्टर रहता है, गन्दे पानी के बहाव के लिए नालियाँ या मोरियाँ बन रही हैं। कुछ शहरों में खुले बाज़ार और चौड़ी सड़कें भी बनाई जा रही हैं। परन्तु देहातों में ज़िला-बोर्ड प्रायः धनाभाव के कारण, बहुत ही कम काम कर पाते हैं, अनेक स्थानों में तो पीने के पानी तक के लिए यथेष्ट कुएँ नहीं हैं।

कहीं कहीं मेजिक लालटेन के व्याख्यानों से, रोगों के कारण तथा उन्हें निवारण करने के उपाय, समझाए जाते हैं। प्लेग और चेचक के टीके का प्रायः सर्वत्र प्रबन्ध है। बच्चों के स्वास्थ की शिक्षा देने के लिए कुछ स्थानों में शिशु-सप्ताह मनाए जाने लगे हैं।

चिकित्सा प्रबन्ध—बीमारियों के इलाज के वास्ते शहरों और कस्बों में सरकारी अस्पताल हैं, उनमें औषधि प्रायः बिना मूल्य दी जाती है, तथा फोड़ों आदि के चीरा-फाड़ी का भी प्रबन्ध है। कुछ विशेष स्थान में खास खास रोगों की चिकित्सा की व्यवस्था है, यथा आँख का, दाँतों का, कान का इलाज, पागलपन, कोढ़ या तपेदिक का इलाज, बावले कुत्ते के काटे का इलाज। छूत की बीमारियों के इलाज के लिए कितने ही बड़े बड़े नगरों में व्यवस्था है। कुछ स्थानों में स्त्रियों के इलाज के लिए 'जनाना अस्पताल' हैं। कहीं कहीं बच्चा जनने के लिए सरकारी अथवा गैर-सरकारी खर्च से प्रसूति-गृह (मातृ-मन्दिर) खोले गए हैं। ट्रेन्ड (शिक्षा प्राप्त) दाइयाँ प्रायः प्रत्येक म्युनिस्पैलिटी में हैं। तथापि इस कार्य को बहुत बढ़ाए जाने की ज़रूरत है। देहातों में तो चिकित्सा-प्रबन्ध बहुत ही कम है। कहीं कहीं बीमारी के मौसम में डाक्टर कुछ दवाइयाँ लेकर देहातों में दौरा करते हैं, इसे गश्ती या घूमने वाले शफ़ाख़ाने कहते हैं। अनेक स्थानों में तो बहुत मामूली वैद्य या हकीम आदि ही हैं, या वह भी नहीं हैं।

ऊपर हमने सरकारी संस्थाओं का उल्लेख किया है। उनके अतिरिक्त बहुत स्थानों में जनता की ओर से भी, औषधालयों आदि में चिकित्सा का प्रबन्ध है, विशेषतया ईसाई मिशन,

रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज, जैन समाज तथा सेवा समितियों की संस्थाएँ अच्छा कार्य कर रही हैं। गाँवों में चिकित्सा-कार्य द्वारा सेवा करने का भाव लोगों में बढ़ रहा है।

सरकारी विभाग—बंगाल, बम्बई और मद्रास में चिकित्सा विभाग का प्रधान अधिकारी सर्जन-जनरल, और अन्य प्रान्तों में इन्स्पेक्टर जनरल कहलाता है। उसके अधीन हर एक ज़िले में एक सिविल सर्जन होता है, जो ज़िले का चिकित्सा कार्य सम्बन्धी मुख्य अधिकारी है। वह स्थानीय अधिकारियों को अस्पतालों और शफ़ाखानों के काम में आवश्यक परामर्श आदि देता है। भारतवर्ष भर के चिकित्सा कार्य का सर्वोच्च अधिकारी 'डायरेक्टर जनरल' होता है।

सन् १९०४ ई० से भारतवर्ष के स्वास्थ विभाग का एक पृथक् अधिकारी रहता है, इसे पहले सेनिटरी कमिश्नर कहते थे, अब पब्लिक हैल्थ कमिश्नर कहते हैं। यह जन्म मृत्यु सम्बन्धी आँकड़े तथा इस विषय की जानकारी संग्रह करता है कि देश में किस किस मुख्य बीमारी का प्रकोप अधिक है, तथा उसका किस प्रकार निवारण किया जा सकता है। इस के अधीन कुछ प्रान्तों में सेनीटरी कमिश्नर या सार्वजनिक स्वास्थ का डायरेक्टर रहता है, और इनके अधीन कुछ ज़िलों में डिप्टी सेनिटरी कमिश्नर या ज़िला स्वास्थ-अफ़सर हैं। कुछ स्थानों में स्वास्थ और चिकित्सा दोनों कार्यों के लिए सम्मिलित व्यवस्था है।

सोलहवां परिच्छेद

आबकारी

—: * :—

मादक पदार्थों का सेवन—साधारणतया खाने पीने की चीजों में अन्न, शाक, फल, दूध, दही, घी आदि की गणना की जाती है। परन्तु इनके अतिरिक्त देश में शराब, अफ़ीम, गाँजा, चरस आदि कई मादक पदार्थों का भी खर्च होता है। शराब अफ़ीम आदि चीजें किसी किसी बीमारी में औषधि के रूप में भी काम में आती है। परन्तु इनका बहुत-सा खर्च आदमी शौकिया किया करते हैं। उन्हें इन वस्तुओं के सेवन की आदत पड़ जाती है। फिर उनके लिए ये ऐसी ही आवश्यक हो जाती हैं, जैसे अन्न पानी; नहीं, नहीं, कुछ आदमियों को तो यह हालत होती है कि भोजन समय पर न मिले तो कोई बात नहीं, किन्तु उन्हें अफ़ीम या भंग आदि तो निश्चित समय पर मिलनी ही चाहिये। न मिलने से, उन्हें बड़े कष्ट का अनुभव होता है। इस लिए ऐसे आदमी, जैसे भी बने इन वस्तुओं को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। वे इन्हें महँगी होने पर भी खरीदते हैं। युवावस्था में यह मनुष्य के वश की बात है, वह चाहे तो इन वस्तुओं का सेवन करना आरम्भ ही न करे। पर पीछे जब एक बार आदत पड़ जाती है, तो छूटनी कठिन होती है। विद्यार्थी प्रायः चाय तथा सीग्रेट-बीड़ी का 'शौक' किया करते हैं, यह ठीक नहीं है; इनसे होने वाला नशा हल्का होता है, वह विशेष मालूम नहीं होता, फिर भी है तो नशा ही।

इससे हानि—प्रायः आदमी पहले थोड़ा नशा करने वाले पदार्थ का, और थोड़ी ही मात्रा में सेवन करते हैं, पीछे क्रमशः वह बढ़ जाता है। नशा करने से धन तो नष्ट होता ही है, स्वास्थ और चरित्र की भी बड़ी हानि होती है। प्रायः नशा करने वालों का शरीर पीला, कमज़ोर और अनेक बीमारियों का घर बन जता है। फिर, नशे में आदमी को अपनी सुध नहीं रहती, उसका अपने शरीर और मन पर काबू नहीं रहता, वह औरों को गाली-गलौच देता तथा मारता पीटता है, इसके परिणाम-स्वरूप उसे दंड भोगना पड़ता है। बहुत से ग़रीब आदमी नशे के व्यसन में पड़ कर, अपने तथा अपने बाल बच्चों के खाने पहनने तक में कंजूसी करके इस मद्द में अपनी हैसियत से कहीं अधिक खर्च किया करते हैं। इस लिए नशे की आदत न पड़ने देनी चाहिये।

मादक द्रव्य निषेध—अपने बन्धुओं को ऐसी हानियों से बचाने के लिए अनेक सज्जन निरन्तर प्रयत्न किया करते हैं। इसी उद्देश्य को लेकर कहीं कहीं सभाएँ संगठित हैं। इन्हें 'टेम्परेन्स सोसायटी' कहते हैं। इनके सदस्य उपदेश, व्याख्यान, मैजिक लालटेन आदि से लोगों को नशीले पदार्थों के सेवन से होने वाली विविध हानियाँ समझाते हैं, जिससे जिन लोगों को इनके सेवन का व्यसन नहीं लगा है, वे इससे मुक्त रहें, और जिन्हें इनकी आदत पड़ गई है, वे उसे क्रमशः छोड़ने का प्रयत्न करें। सरकार भी इस प्रकार के कुछ नियम बनाती है जिनसे इस विषय में कुछ रोक-थाम हो, यथा, छोटे बालकों को ये चीजें न बेची जायँ, कोई आदमी निर्धारित मात्रा से अधिक मोल न ले।

सरकारी विभाग—प्रत्येक प्रान्त में मादक पदार्थों की

उत्पत्ति तथा सेवन का नियंत्रण करने के लिए एक सरकारी विभाग रहता है उसे आबकारी या 'ऐक्साइज' विभाग कहते हैं। इसका सर्वोच्च अधिकारी 'ऐकसाइज़-कमिश्नर' कहलाता है। उसके नीचे हर ज़िले में एक ऐकसाइज़ अफसर रहता है, उसके अधीन इस विभाग के सब-इन्स्पेक्टर आदि रहते हैं। सब मादक पदार्थ सरकारी देख-रेख में तैयार किए जाते हैं, फिर ये कारखानों से मालगोदाम में भेज दिए जाते हैं। प्रत्येक पदार्थ बेचने का ठेका प्रति वर्ष नीलाम होता है, जो आदमी सब से ऊँची बोली बोलता है, उसी के नाम साल भर का ठेका हो जाता है। ठेकेदारों को यह पदार्थ फुटकर बिक्री के लिए एक निश्चित भाव से दिए जाते हैं। आबकारी विभाग के कर्मचारी जहाँ तहाँ घूमते रहते हैं, और इस बात की जाँच करते हैं कि कोई आदमी बिना सरकारी इजाज़त कोई मादक पदार्थ तो नहीं बनाता या बेचता, तथा सर्वसाधारण आबकारी विभाग के नियमों का ठीक ठीक पालन करते हैं। नियम भंग करने वालों को दंड दिया जाता है। इस विभाग से होने वाली आय के सम्बन्ध में पहले, सरकारी आय के प्रसंग में, लिखा जा चुका है।

सतरहवाँ परिच्छेद

शिक्षा

—: * :—

अंगरेजों के आगमन से पूर्व—भारतवर्ष एक धर्म-प्रधान देश रहा है, और यहाँ धर्म के साथ शिक्षा का घनिष्ठ

सम्बन्ध रहा है। अस्तु, प्राचीन काल में, यहाँ विविध स्थानों में विद्यापीठों (विश्वविद्यालयों) और मठों की, गुरुकुल, ऋषिकुल, आश्रम आदि शिक्षा संस्थाएँ थीं। उस ढंग की कुछ संस्थाएँ अब भी चल रही हैं। मुसलमानों के ज़माने में, मसजिदों के 'मकतब' भी शिक्षा प्रचार में समुचित योग दिया करते थे। व्यापार धन्धे वालों की भी अपनी अपनी पाठशालाएँ होती थीं। निदान अंगरेज़ों के आने के पूर्व यहाँ प्रत्येक ग्राम में ऐसी शिक्षा संस्थाएँ थीं जिनमें सर्व साधारण के बालक बिना विशेष ख़र्च किए, यथेष्ट शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। इन संस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति जनता स्वयं करती रहती थी। सतरहवीं अठारहवीं शताब्दी में, देश में राजनैतिक उथल-पुथल मचने के कारण शिक्षा प्रचार के कार्य में भी कुछ शिथिलता आ गई।

अंगरेजों के समय में—अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से योरपियन लोगों, विशेषतया ईसाइयों का शिक्षा-क्षेत्र में कुछ प्रभाव पड़ने लगा। पहले संस्कृत फ़ारसी की ओर ही अधिक ध्यान रहा। सन् १८१३ ई० में गवर्नर-जनरल को शिक्षा-कार्य के लिए एक लाख रुपए वार्षिक व्यय करने की अनुमति हुई, तब भी शिक्षा-प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। अङ्गरेजी शिक्षा बढ़ाने के लिए सरकारी संस्थाएँ यहाँ सन् १८३५ ई० से हुईं। उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि कम्पनी को यथेष्ट नौकर मिल जाया करें, एवं पाश्चात्य विज्ञान कला कौशल और साहित्यादि को उत्तेजना मिले। आज कल जो उच्चशिक्षा का माध्यम अंगरेजी बनी हुई है, इसका निश्चय बहुत वाद-विवाद के पश्चात्, पहले क़ानूनी सलाहकार मेकाले के प्रभाव से सन् १८३५ ई० में हुआ था। उस समय वाद-विवाद केवल इतना

था कि शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाय या संस्कृत फ़ारसी में। इसमें अंग्रेज़ी पक्ष वालों की जीत रही। यह स्पष्ट था कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले थोड़े ही रहेंगे ; सर्वसाधारण तक पहुँचने वाली प्रारम्भिक शिक्षा केवल देशी भाषाओं द्वारा ही दी जा सकती है। क्रमशः इस ओर ध्यान दिया गया। सन् १८५४ ई० में बोर्ड-आफ-कंट्रोल के अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड ने एक सविस्तर पत्र (खरीता) लिखा—इसी के आधार पर वर्तमान शिक्षा प्रणाली प्रचलित हुई। इस पत्र में निम्नलिखित उपायों को काम में लाना उचित समझा गया था :—

(१) शिक्षा का एक पृथक् विभाग स्थापित करना।

(२) प्रत्येक प्रान्त में लंदन विश्वविद्यालय के ढंग पर विश्वविद्यालय स्थापित करना।

(३) वर्तमान सरकारी स्कूल और कालिजों को सहायता देना, और आवश्यकतानुसार उनकी संख्या बढ़ाते रहना।

(४) सब श्रेणी के स्कूलों के अध्यापकों के लिए ट्रेनिंग स्कूल खोलना।

(५) प्रारम्भिक शिक्षा के लिए देशी भाषा के स्कूलों पर अधिक ध्यान देना।

(६) गैर-सरकारी स्कूलों को सहायता देने की प्रथा जारी रखना।

इस पत्र के अनुसार सन १८५७ ई० में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में, १८८२ में लाहौर में, और १८८७ में इलाहाबाद में विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। ये विश्वविद्यालय केवल पाठ्य क्रम निश्चित करते और परीक्षा लेते थे, शिक्षा देने वाली

संस्थाओं पर इनका विशेष अधिकार न था। सन् १८६४ ई० में शिक्षा को 'उन्नत' बनाने के लिए 'इंडियन यूनिवर्सिटी ऐक्ट' नामक क़ानून बनाया गया। इसके अनुसार शिक्षा देना और अन्वेशन करना भी विश्व विद्यालयों का कर्तव्य ठहराया गया; किन्तु धनाभाव के कारण शिक्षा देने का प्रबन्ध केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही किया गया। सन् १९१७ ई० में कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन बैठाया गया। इसने सिफ़ारिश की कि उच्च शिक्षा का प्रबन्ध केवल विश्व विद्यालयों में हो, और उन में पढ़ने वाले विद्यार्थी यथा-सम्भव बोर्डिंग-हाउस अर्थात् छात्रा-लयों में रहें; हाई स्कूलों की अन्तिम दो श्रेणियों में कालिज की प्रथम दो श्रेणियाँ मिला कर 'इंटरमीजियट कालिज' स्थापित किए जायँ। इस कमीशन की सिफ़ारिशें विशेषतया इलाहाबाद, लखनऊ, ढाका और रंगून के विश्व विद्यालयों में अमल में लाई गईं।

वर्तमान शिक्षा संस्थाएँ—अब देश की अधिकतर शिक्षा संस्थाओं पर सरकारी निरीक्षण तथा नियंत्रण है। कुछ संस्थाएँ ऐसी भी हैं, जिनका संचालन तथा खर्च जनता द्वारा होता है, और जो सरकार से कुछ सम्बन्ध न रख कर अपना कार्य स्वतंत्र रूप से करती हैं। आधुनिक संस्थाओं के चार भेद हैं:— (१) प्राइमरी स्कूल, (२) सेकेंडरी या माध्यमिक स्कूल, (३) कालिज या महा विद्यालय, और (४) उद्योग धंधों के स्कूल और कालिज।

देहातों के प्राइमरी स्कूल ज़िला-बोर्ड के खर्च से, और शहरों के स्कूल म्युनिसिपैलिटियों के खर्च से चलते हैं। कुछ शहरों में म्युनिसिपैलिटियों ने अपने क्षेत्र में प्रारम्भिक शिक्षा

अनिवार्य और निश्शुल्क करदी है, परन्तु विशेषतया धनाभाव के कारण इस सम्बन्ध में बहुत सा काम होना अभी शेष है। ज़िला-बोर्डों ने शिक्षा निश्शुल्क तथा अनिवार्य करने का कार्य प्रायः कुछ भी नहीं किया है।

माध्यमिक स्कूलों में मिडल और हाई स्कूल सम्मिलित हैं। कुछ हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ हो गई हैं, अन्यत्र अभी तक अंगरेज़ी की ही प्रधानता है। हाई स्कूल की अन्तिम परीक्षा को ऐंट्रेंस, मेट्रीक्यूलेशन, स्कूल लीविंग, या हाई स्कूल सर्टीफ़िकेट परीक्षा कहते हैं।

इस परीक्षा को पास करने पर विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए कालिज में दाख़िल होते हैं। यहाँ दो दो वर्ष के बाद एफ. ए., बी. ए. और एम. ए. की परीक्षाएँ होती हैं। * बी. ए. पास व्यक्ति 'ग्रेजुएट' कहलाते हैं। उच्च शिक्षा का माध्यम अभी तक प्रायः अंगरेज़ी ही है, हाँ कुछ स्थानों में देशी भाषाओं की भी उच्च परीक्षा होती है। उच्च शिक्षा का क्रम निश्चित करने और उसकी परीक्षा लेने का प्रबन्ध विश्व विद्यालय या यूनिवर्सिटी करती है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, इलाहाबाद, आगरा, नागपुर, पटना, लखनऊ, बनारस, और अलीगढ़ आदि अठारह स्थानों में विश्व विद्यालय हैं। विश्व विद्यालय का प्रधान अधिकारी 'चांसलर' और उसके लिए नियम बनाने वाली सभा 'सिनेट' या 'कोर्ट' कहलाती है। प्रबन्धकारिणी सभा को 'सिंडीकेट' और इसके सभापति को 'वाइस-चांसलर' कहते हैं। प्रत्येक विश्व विद्यालय में एक वेतन-भोगी रजिस्ट्रार

---

* कुछ स्थानों में 'इंटरमीजियट कालिज' है।

रहता है, यह उक्त दोनों सभाओं की रिपोर्ट लिखता तथा अन्य आवश्यक कार्य करता है।

स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार बहुत कम है; हाँ, अब क्रमशः बढ़ता जा रहा है। अधिकांश लड़कियाँ प्राइमरी स्कूलों में ही पढ़ती हैं। पुरुषों तथा स्त्रियों को अध्यापकीय कार्य की शिक्षा देने के लिए भिन्न भिन्न स्थानों में कुछ नार्मल स्कूल, ट्रेनिंग स्कूल, तथा ट्रेनिंग कालिज खुले हुए हैं।

कुछ नगरों में दस्तकारियों तथा शिल्प की शिक्षा के लिए औद्योगिक स्कूल तथा कालिज खुले हुए हैं, और व्यापार, क़ानून, कृषि, तथा चिकित्सा (डाक्टरी) सम्बन्धी शिक्षा का प्रबन्ध है। परन्तु देश में कुल मिलाकर भिन्न भिन्न पेशों की शिक्षा देने वाली संस्थाओं की बहुत कमी है, और अनेक नवयुवक केवल साहित्यिक शिक्षा पाने के कारण, आजीविका का यथेष्ट साधन प्राप्त करने में असमर्थ रह जाते हैं।

शिक्षा प्रचार और सुधार—भारत में बहुत ही कम व्यक्ति शिक्षित हैं। स्त्री पुरुष मिलाकर दस फी सदी से भी कम ही कुछ लिखना पढ़ना जानते हैं। जिन बालक बालिकाओं की उम्र पढ़ने योग्य है, उनमें से आधे से कम लड़कों तथा बहुत ही कम लड़कियों के लिए शिक्षा संस्थाएँ खुली हुई हैं। इनमें बहुत वृद्धि होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त शिक्षा प्रणाली के सुधार की भी बड़ी आवश्यकता है; इस विषय में यहाँ नेता चाहते हैं कि (१) कृषि, कला-कौशल और दस्तकारियों की यथेष्ट शिक्षा दी जाय, (२) नैतिक, शारीरिक, और स्वास्थ तथा सदाचार सम्बन्धी शिक्षा की ओर समुचित ध्यान दिया जाय, (३) शिक्षा का माध्यम देशी-भाषाएँ हों, (४) शिक्षा

इतनी सस्ती हो कि वह सर्व साधारण की पहुँच से बाहर न हो; प्रारम्भिक शिक्षा तो निश्शुल्क ही हो। (५) विद्यार्थियों के रहन-सहन में सादगी और संयम रहे। संक्षेप में प्रत्येक व्यक्ति सुयोग्य नागरिक हो। सरकार इस ओर कुछ ध्यान देती है, पर उसे धनाभाव की बड़ी बाधा है।

शिक्षा विभाग—'शिक्षा स्वास्थ और भूमि विभाग' नाम का एक विभाग केन्द्रीय अर्थात् भारत सरकार का है। सन् १९१९ ई० के सुधारों के अनुसार अधिकांश शिक्षा का विषय हर एक प्रान्त में हस्तान्तरित है। इस विषय सम्बन्धी नीति, मंत्री ठहराता है।* शिक्षा विभाग का प्रधान अधिकारी डायरेक्टर कहलाता है। उसका विश्व विद्यालय से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, हाँ वह सिनेट तथा सिंडीकेट का सदस्य अवश्य होता है। डायरेक्टर के अधीन एक एक डिविज़न या सर्कल के इन्स्पेक्टर तथा उसके सहायक अधिकारी होते हैं। ज़िले में एक डिप्टी इन्स्पेक्टर तथा उसके कुछ सहायक रहते हैं। इन्स्पेक्टर और डिप्टी इन्स्पेक्टर समय समय पर सरकारी तथा म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों की शिक्षा संस्थाओं का निरीक्षण करते हैं। जो प्राइवेट संस्थाएँ सरकारी सहायता लेती हैं, उन्हें भी सरकारी नियमों का पालन करना, तथा इन्स्पेक्टरों द्वारा निरीक्षण कराना पड़ता है।

---

* सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार प्रान्तीय विषयों में हस्तान्तरित और रक्षित का भेद नहीं रहा है।

अठारहवाँ परिच्छेद

रेल

—: * :—

प्राचीन काल में आदमी पैदल यात्रा करते थे, या घोड़े ऊँट आदि पर सवार होकर या बैलगाड़ी, इक्के ताँगे आदि में। अब तो साइकिल, ट्राम, मोटर आदि अनेक सवारियाँ चल पड़ी हैं। हवाई जहाज़ों का भी प्रचार बढ़ रहा है, तथापि लम्बी यात्राओं के लिए अभी रेल ही सब से अच्छी समझी जाती है।

भारतवर्ष में रेलों का निर्माण—यद्यपि रेल बनाने का विचार पहिले पहिल सन् १८४३ ई० में हुआ, परन्तु छः साल तक कुछ कारवाई न हुई और सन् १८४९ ई० में लार्ड डलहौज़ी ने यह कार्य प्रारम्भ कराया। हिन्दुस्तान के समस्त प्रधान नगरों को रेलों द्वारा मिला देने की योजना उन्हीं की है। बम्बई और कलकत्ते से चलने वाली जी० आई० पी० (G. I. P) और ई० आई० आर० (E. I. R) सब से पुरानी लाइनें हैं। ये सन् १८४९-५० ई० में आरम्भ हुईं।

आरम्भ में रेलें बनाने के लिए सरकार ने कम्पनियों को ठेका दिया; शर्त यह रही कि यदि कम्पनियों को रेलों में लगाई हुई पूँजी पर पाँच फी सदी से कम मुनाफा रहा तो सरकार उस कमी की पूर्ति कर देगी, और यदि मुनाफा अधिक रहा तो जितना अधिक होगा, वह सरकार और कम्पनी में आधा-आधा बँट जायगा। रेलों के प्रबन्ध का अधिकार सरकार के हाथ में

रहेगा, और निर्धारित समय के बाद वह उन्हें निश्चित हिसाब से खरीद सकेगी। इस प्रणाली के अनुसार सन् १८५६ ई० से काम हुआ, कम्पनियों ने खर्च खूब किया, और रेलों में बहुत हानि रही। इस लिए सन् १८६६ ई० में निश्चय किया गया कि सरकार अपनी रेलें स्वयं बनाए। परन्तु आर्थिक तथा अन्य कठिनाइयों का अनुभव करके, सन् १८७६ ई० में, कुछ अंश में पुनः पुरानी नीति अवलम्बन की गई। इस समय से जो लाइनें बनी है, वे कुछ अंश में सरकार की ओर से, और कुछ कम्पनियों की ओर से बनाई हुई हैं। कम्पनियों के रुपए के सूद की गारंटी सरकार लेती है और उन्हें ज़मीन मुफ़्त, बिना कुछ दाम दिए, मिल जाती है। सरकार कम्पनियों पर निगरानी रखती है, ठेके में यह बात लिखी रहती है कि कम्पनी अमुक परिमाण से अधिक किराया या महसूल न ले सकेगी।

बड़ी बड़ी रेलों की व्यवस्था होने पर कुछ ऐसी ब्रांच लाइनों की आवश्यकता थी, जो इन्हें देश के भीतरी भागों से मिला दें। ऐसी लाइनें ज़िला-बोर्डों तथा प्राइवेट कम्पनियों को उत्साहित करके बनवाई गई हैं। कुछ रेलें देशी राज्यों की हैं। रेलवे लाइनों की चौड़ाई भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग अलग है, छोटी लाइनें दो-ढाई फुट और बड़ी लाइनें पाँच, साढ़े पाँच फुट तक चौड़ी हैं। सब मिला कर भारतवर्ष में लगभग ४३,००० मील रेलवे लाइन बन गई हैं इनमें ८८४ करोड़ रुपए लग चुके हैं।

रेलों से बहुत समय तक नुकसान ही रहा। पहले तो कम्पनियों ने खर्च खूब किया। फिर, कुछ लाइनें सीमा प्रान्त के लिए विशेषतया सैनिक दृष्टि से बनाई गई; इनसे यात्रा और माल-ढुलाई कम होती है। सन् १९०० ई० में प्रथम बार लाभ

हुआ, यह महायुद्ध तक बढ़ता रहा। युद्ध के बाद फिर घाटा होने लगा। अब पुनः लाभ होने की सम्भावना है।

रेलों से लाभ—रेलों से यात्रा शीघ्र तथा कम व्यय में होती है, अब हजारों आदमी प्रति दिन दूर दूर के स्थानों में जाते आते हैं। इससे ज्ञान की वृद्धि होती है, सहयोग और राष्ट्रीयता के भाव बढ़ते हैं, अस्पृश्यता-निवारण होता है। माल गाड़ियों से हजारों मन माल इधर से उधर भेजा जाता है, व्यापार की खूब वृद्धि होती है, दुर्भिक्ष-निवारण का प्रयत्न शीघ्रता-पूर्वक किया जा सकता है। रेलों द्वारा सरकार को राज्य प्रबन्ध के लिए पुलिस या फ़ौज एक जगह से दूसरी जगह भेजने में बड़ी सुविधा तथा किफायत होती है।

रेलों से यह हानि भी है कि व्यापारियों द्वारा बहुधा अन्न, रुई आदि आवश्यक माल विदेशों को चला जाने से यहाँ मँहगा हो जाता है, तथा विदेशी तैयार माल, विशेषतया फैशन या शौकीनी की चीज़ों की आयात से देश का बहुत सा रुपया बाहर चला जाता है, और स्वदेशी उद्योग धन्धों की हानि होती है। सरकार तथा व्यापारियों के समुचित ध्यान देने से यह हानि रोकी जा सकती है।

रेलों का प्रबन्ध—इस समय अधिकांश रेलवे लाइनों की मालिक सरकार है, परन्तु कई एक लाइनों का प्रबन्ध कम्पनियों के हाथ में है। इस सम्बन्ध में भारतीय नेताओं का मत है :—

(क) कम्पनियाँ यात्रियों के कष्ट की परवाह नहीं करतीं, मेलों और जलसों के अवसर पर तो लोगों को बहुत ही असुविधा होती है।

(ख) कम्पनियाँ रेलों का किराया-भाड़ा ऐसा रखती हैं जिससे बिदेशी माल को प्रोत्साहन मिलता है, और देशी उद्योग-धन्धों को बहुत हानि पहुँचती है।

(ख) कम्पनियाँ प्रायः हिन्दुस्थानियों को उच्च पद प्रदान नहीं करतीं।

(घ) सरकार रेलों से होने वाले मुनाफे के अधिकांश भाग से बंचित रहती है।

(च) जब सरकार पूँजी लगाती है, या लगी हुई पूँजी पर व्याज की गारंटी देनी है, तो उसे प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर पूर्वोक्त त्रुटियाँ निवारण करनी चाहिये।

भारतीय व्यवस्थापक सभा ने निश्चय किया है कि ठेकों की अवधि समाप्त होने पर रेलें सरकारी प्रबन्ध में ले ली जायँ। ई० आई० आर०, और जी० आई० पी० रेलें क्रमशः सन् १९२४ और १९२५ ई० में सरकारी प्रबन्ध में ली जा चुकी हैं।

रेल विभाग—सन् १९०५ ई० तक रेलों का काम भारत सरकार के सार्वजनिक निर्माण-विभाग के अधीन रहा। उस वर्ष यह रेलवे के विशेषज्ञों के एक बोर्ड के सुपुर्द हुआ, जिस में एक सभापति और दो अन्य मेम्बर होते थे। रेलवे कार्य-क्रम व्यय और नीति सम्बन्धी सब मामलों का फैसला उक्त बोर्ड द्वारा होता था। सन् १९२१ ई० में रेलों के प्रबन्ध आदि की जाँच के लिए एक कमेटी नियुक्त हुई। उसकी सिफारिश के अनुसार अब भारत सरकार के एक सदस्य की अध्यक्षता में रेल और व्यापार विभाग संगठित है। सन् १९२५ ई० से रेलों का बजट, अन्य सरकारी बजट से अलग बनता है।

रेल विभाग और सन् १९३५ ई० का विधान— सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार रेल विभाग के कार्य के लिए स्वतंत्र व्यवस्था की गई है। अब यह कार्य 'संघीय रेलवे अथारिटी' नामक संस्था करेगी। 'अथारिटी' कहने से भी इसी संस्था का बोध होगा। इस के सात सदस्य होंगे। इनकी नियुक्ति निर्धारित नियमों के अनुसार, गवर्नर-जनरल करेगा। गवर्नर जनरल अपने प्रतिनिधि के रूप में एक या अधिक व्यक्तियों को 'अथारिटी' की सभा में भेज सकेगा। ये उसमें भाषण दे सकेंगे। रेलवे प्रबन्ध सम्बन्धी प्रधान कर्मचारी 'चीफ रेलवे कमिश्नर' कहलाएगा; इसकी, तथा इसे परामर्श देने के लिये एक आर्थिक कमिश्नर की भी नियुक्ति गवर्नर-जनरल ही करेगा। वही 'अथारिटी' से परामर्श करके, रेलवे कम्पनियों के डायरेक्टर और डिप्टी-डायरेक्टरों की नियुक्ति करेगा। वह 'अथारिटी' को आवश्यक हिदायतें दे सकेगा, जो उसे माननी होंगी। रेलों के कार्य में आवश्यकता होने पर रुपया संघ सरकार देगी, और जो बचत होगी, वह निर्धारित योजना के अनुसार संघ और 'अथारिटी' में विभक्त की जायगी। 'अथारिटी' ब्रिटिश भारत के लिए तथा संघ में सम्मिलित देशी राज्यों के लिए तो रेलें बनाएगी ही, गवर्नर-जनरल का आदेश होने पर वह भारतवर्ष के अन्य देशी राज्यों के लिए भी यह कार्य करेगी। अस्तु, अथारिटी पर केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल का विशेष नियंत्रण न होगा, उसके सदस्य प्रायः गवर्नर-जनरल के ही प्रति उत्तरदायी रहेंगे।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

डाक और तार

—:*:—

डाक का काम—हमारा सम्बन्ध अपने गाँव या नगर वालों से ही नहीं होता, दूर दूर के आदमियों से भी होता है; कोई हमारा मित्र या सम्बन्धी होता है, किसी से हमें माल मंगाना होता है, और किसी के पास कुछ भेजना होता है। हमें दूसरों का कुशल-क्षेम या समाचार जानने की आवश्यकता होती है। यह काम डाक द्वारा होता है। साधारण आदमी के लिए अपना पत्र दूर दूर भेजने का प्रबन्ध स्वयं करना बहुत कठिन होता है, फिर पत्र ले जाने वाला आदमी चाहे पैदल जाय, या घोड़े आदि पर सवार होकर जाय, इसमें समय और द्रव्य बहुत खर्च होता है, रेल से जाने में समय की बचत हो जायगी, पर खर्च तो उसमें भी काफ़ी होगा। डाक का काम इकट्ठा सरकार द्वारा होने से समय और द्रव्य दोनों की बचत होती है। भारतवर्ष में आधुनिक पद्धति से डाक का प्रबन्ध पिछली शताब्दी के मध्य से होने लगा।

अब डाक का काम मुख्यतया रेल द्वारा होता है; गाँवों में डाक चिट्ठीरसां (ग्राम-पोस्टमेन) ले जाता है, वह या तो पैदल जाता या है घोड़े या ऊँट की सवारी पर। जिन स्थानों में रेल नहीं पहुँचती और मोटर जाती है, वहाँ मोटर से काम लिया जाता है। इंगलैंड, अमरीका आदि देशों की डाक

जहाज़ों से आती है। हवाई जहाज़ों द्वारा भी डाक का काम होने लगा है। डाक और तार का कार्य लार्ड डलहौजी के समय में, रेलों के साथ ही आरम्भ हुआ था। पहले एक पत्र दो आने में जाता था। क्रमशः डाक महसूल घटता गया, और पोस्ट कार्ड के लिए एक पैसा, और लिफाफे के लिए दो पैसा हो गया था। महायुद्ध के समय से महसूल बढ़ गया है, और अब पोस्टकार्ड का मूल्य तीन पैसे, और लिफाफे का एक आना है। साधारण आदमियों के लिए यह मूल्य बहुत अधिक है, वे अनेक बार पत्र भेजने की आवश्यकता का अनुभव करते हुए भी, इस अधिक मूल्य के कारण, नहीं भेजते। भारतीय नेताओं का मत है कि डाक महसूल पुनः महायुद्ध से पहले के समान कर दिया जाय।

अखबार तथा पुस्तकों आदि के पार्सल भी डाक द्वारा भेजे जाते हैं। डाक से रुपया ('मनीआर्डर') भी भेजा जाता है। डाकखानों में 'सेविंग बैंक' नाम का एक खाता रहता है। उसमें आदमी अपनी बचत का रुपया जमा करा सकते है। इस पर कुछ सूद मिलता है। यह रुपया आवश्यकतानुसार निकाला अर्थात् वापिस लिया जा सकता है। डाक से जाने वाले पत्रों या पार्सल आदि का बीमा हो सकता है; उसके लिए फीस अलग देनी होती है।

तार—तार के द्वारा समाचार और भी जल्दी भेजा जा सकता है; कुछ मिनटों में दूर दूर की खबर आजाती है। इससे समाचार-पत्रों को ताजी खबरें छापने में बड़ी सुविधा होती है। व्यापारी दूर देशों के माल का भाव तार द्वारा झटपट मालूम कर लेते हैं। जल्दी का काम हो तो तार द्वारा रुपयों का 'मनीआर्डर'

भी भेजा जा सका है। तार विभाग से राज्य प्रबन्ध में भी सुविधा होती है। भिन्न भिन्न स्थानों के अफसर तार द्वारा सलाह मशविरा कर सकते हैं, और आवश्यकतानुसार पुलिस, सेना या अन्य ज़रुरी सामान भेजने के लिए कहा जा सकता है।

डाक और तार से दूर दूर के रहने वालों का पारस्परिक सम्बन्ध बहुत बढ़ जाता है, और ज्ञान-वृद्धि में बहुत सहायता मिलती है। भारतवर्ष में टेलीफ़ोन का प्रचार क्रमशः बढ़ रहा है। कुछ मुख्य मुख्य नगरों में बेतार के तार अर्थात 'वायरलेस' (Wireless) का भी प्रबन्ध है, इसके द्वारा दूर दूर के देशों का समाचार बहुत ही जल्दी आ जा सकता है।

डाक और तार विभाग—सन् १९१२ ई० तक डाक और तार का विभाग अलग अलग था। उक्त वर्ष से दोनों विभाग मिलाने का कार्य किया गया, और १९१४ में पूर्णतः मिला दिए गए। अब भारतवर्ष भर में इस संयुक्त विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी 'डायरेक्टर-जनरल' कहलाता है। यह भारत सरकार के 'उद्योग और श्रम विभाग' के प्रबन्ध के अधीन रहता है। डाक और तार के प्रबन्ध के लिए यह देश नौ सर्कलों में, और प्रत्येक सर्कल कुछ डिविजनों में बंटा हुआ है। सर्कल के अधिकारी को पोस्ट-मास्टर-जनरल, और डिविजन के अधिकारी को सुपरिंटेंडैन्ट कहते हैं। प्रत्येक सुपरिंटेंडैन्ट के नीचे कुछ इन्सपेक्टर रहते हैं, जो कई कई ज़िलों के डाकखानों का निरीक्षण करते हैं। प्रत्येक ज़िले में एक बड़ा डाकखाना है, उसका मुख्य अधिकारी पोस्ट मास्टर कहलाता है। ज़िले में कुछ सब-पोस्ट-आफिस और कुछ ब्रांच-पोस्ट आफिस होते हैं। बड़े-बड़े गाँवों में भी डाकखाने हैं, इनकी संख्या क्रमशः बढ़ाई जा रही है।

बीसवाँ परिच्छेद

उद्योग धन्धे और व्यापार

—: * :—

भारतवर्ष के उद्योग धन्धों का ह्रास—इस पुस्तक के आरम्भ में यह बताया जा चुका है कि यद्यपि अंगरेज़ इस समय इस देश में राज्य कर रहे हैं, वे यहाँ पहले व्यापार करने के लिए आए थे। वास्तव में भारतवर्ष अति प्राचीन काल से अपने उद्योग धन्धों, शिल्प, कला-कौशल या कारीगरी आदि के लिए खूब प्रसिद्ध रहा है। अठारहवीं शताब्दी तक, यहाँ की ढाके की मलमल तथा ऊनी और रेशमी वस्त्र तथा अन्य पदार्थों के लिए दूर दूर के देश लालायित रहते थे। कम्पनी के व्यापारियों ने यहाँ जुलाहों से ठेके पर कपड़ा तैयार करा कर योरप भेजा और खूब लाभ उठाया। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में, इंगलैंड में भाफ़ के एंजिनों का आविष्कार होने पर, वहाँ क्रमशः कल-कारखानों से माल तैयार होने लगा। आरम्भ में वह भद्दा और मँहगा था, परन्तु वहाँ की स्वदेश-हितैषी सरकार ने उसे बनाने वालों को आर्थिक सहायता दी और विदेशी (भारतीय) माल पर खूब कर लगाया। धीरे धीरे वहाँ माल अच्छा और सस्ता बनने लगा। फिर तो वहाँ भारतीय तैयार माल की आवश्यकता न रही, उलटा वहाँ का, कल-कारखानों का माल यहाँ आकर बिकने लग गया। हाँ, उन कल-कारखानों के लिए रुई आदि कच्चे माल की जरूरत होने लगी। अस्तु, यहाँ की

कारीगरी और उद्योग धन्धों में लगे हुए आदमी बेकार हो गए, और खेती के आश्रित रहने लगे।

कल-कारखानों की स्थापना—भारतवर्ष में कल-कारखाने स्थापित करने का कार्य सन् १८५५ ई० में आरम्भ हुआ। पहले बम्बई में 'काटन मिल' खोली गई, धीरे धीरे उसका अनुकरण हुआ; कपड़ा बुनने की कई मिलें चलने लगीं, लोहे फौलाद आदि का माल तैयार करने के भी कई कारखाने खुल गए। सन् १९०४ ई० से, यहाँ औद्योगिक कान्फ्रेंस होने लगी है, इसमें औद्योगिक उन्नति के उपायों पर विचार होता है। सन् १९०५ ई० में बंगाल के दो टुकड़े किए जाने पर, अनेक आदमियों ने उस कार्य से अपना असन्तोष प्रकट करने के लिए स्वदेशी आन्दोलन विशेष रूप से अपनाया, इससे औद्योगिक उन्नति की ओर लोगों का ध्यान और अधिक आकर्षित हुआ, और, यहाँ विविध प्रकार की 'स्वदेशी' वस्तुएँ बनने और उपयोग में आने लगीं।

कुछ बाधाएँ तथा उनका निवारण—भारतवर्ष की औद्योगिक उन्नति में कई बाधाएँ रही हैं, यथा, अधिकांश आदमियों का बहुत निर्धन होना, और जिनके पास कुछ द्रव्य हो भी, उनका उसे उद्योग धन्धों में न लगा कर जमा करके रखना, या जेवर आदि में लगाना; शिक्षा की, विशेषतया विज्ञान और यंत्रों की शिक्षा की कमी, आदि। क्रमशः इन बातों का सुधार हुआ है, यद्यपि अब भी यहाँ कल-कारखानों के लिए यथेष्ट पूंजी नहीं मिलती, तथापि धीरे धीरे अनेक बैंक खुल गए हैं तथा कम्पनियाँ बन गई हैं, और बनती जा रही हैं। कितने ही युवकों ने विदेशों में रह कर वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त

करके 'स्वदेशी' की उन्नति में सहायता दी है। अब तो यहाँ भी औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था हो चली है।

मज़दूरों का संगठन—प्रायः मज़दूर साधन-हीन होते हैं, और वे अपनी शिकायतें सहज ही दूर नहीं करा सकते। अतः उन्होंने अपने हितों की रक्षा करने के लिए कुछ स्थानों में मज़दूर सभाओं ('ट्रेड यूनियन') का संगठन किया है। ये सभाएँ इस बात का प्रयत्न करती हैं कि मज़दूरों से कारखानों में ठीक व्यवहार हो, उन्हें उचित वेतन आदि मिले। ये मज़दूरों को उनके सम्बन्ध में आवश्यक परामर्श देती हैं। मज़दूरों की ओर से भारतीय व्यवस्थापक सभा में सदस्य सरकार नामज़द करती है।*

पूँजीपतियों का संगठन—कारखाने वालों ने भी अपना संगठन कर रखा है, उनकी 'ऐसोशियेटेड चेम्बर-आफ़-कामर्स' (व्यापार मंडल) तथा अन्य संस्थाएँ हैं। इनका उद्देश्य उद्योग धन्धों तथा व्यापार की उन्नति करना है। ये इस बात का प्रयत्न करती हैं कि कोई क़ानून ऐसा न बने, जिससे किसी पदार्थ के उत्पादन या व्यापार को हानि पहुँचे। इनकी ओर से भारतीय व्यवस्थापक सभा, तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों में प्रतिनिधि रहते हैं।

श्रमजीवियों और पूँजीपतियों का विरोध और उसका निवारण—बहुधा पूंजीपति अपने स्वार्थ का ही अधिक ध्यान रखते हैं। वे अधिक से अधिक धन कमाने की फ़िक्र

---

* सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार मज़दूरों के निर्वाचित सदस्य रहा करेंगे।

में रहते हैं। कुछ मज़दूर भी, अपने काम के बदले अधिक से अधिक मज़दूरी और सुविधाएँ पाने की बात सोचते हैं। पूंजीपति अपनी शर्त मनवाने के लिए द्वारावरोध (Lock-out) अर्थात् कारखाना बन्द करता है, और मज़दूरों का काम पर आना रोक देता है। मज़दूर यथा-सम्भव संगठित रूप से हड़ताल (Strike) करके अपनी शक्ति का या प्रभाव का परिचय देते हैं। इन दोनों बातों से कारखाने में माल पैदा होना रुक जाता है, इससे देश की बड़ी हानि होती है।

इसे रोकने के उपाय यह हैं :—(१) कारखाने से होने वाले लाभ का काफ़ी अंश मजदूरों में बाँट दिया जाय, (२) मजदूर अपनी थोड़ी थोड़ी पूंजी इकट्ठी करके कारखानों में लगाएँ और इस प्रकार कारखाने से होने वाले लाभ में हिस्सा लें, (३) सब मजदूर एक-मात्र अपनी ही पूँजी से (और अपने ही श्रम से) कारखाने को चलाएँ। इस दशा में कारखाना उनका ही होगा, दूसरा पक्ष होगा ही नहीं, और इस लिए विरोध की बात भी न रहेगी। कुछ स्थानों में मज़दूरों और पूंजीपतियों के विवाद को मिटाने के लिए, समझौता सभाएँ हैं, जो दोनों पक्ष का बीच-बचाव करने का प्रयत्न करती रहती हैं।

कारखाना-क़ानून—कारखानों में मजदूरों का स्वास्थ्य बिगड़ने, तथा उनके चोट-चपेट लगने आदि की बहुत सम्भावना रहती है। इसे रोकने के लिए सरकारी क़ानून की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में पहला कारखाना-क़ानून ('फेक्टरी ऐक्ट') सन् १८८१ ई० में बना, इसमें सन् १९११, १९२२, १९२३ और १९२५ ई० में संशोधन हुआ। तदनुसार कारखाने में काम करने वाले किसी मज़दूर से एक सप्ताह में ६० घंटे और एक दिन में

११ घंटे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता। सप्ताह में एक दिन छुट्टी रहनी चाहिये। बारह वर्ष से कम उम्र के बालकों को काम पर नहीं लगाया जा सकता। चौदह वर्ष से कम उम्र वालों से छः घंटे से अधिक श्रम नहीं कराया जा सकता। स्त्रियों तथा लड़कों से रात्रि में काम कराने का निषेध है। मशीन के चारों ओर घेरा या बाड़ रहनी चाहिये। कारखानों में पानी, रोशनी, हवा, सफाई आदि का सुप्रबन्ध होना चाहिये।

क़ानून में उक्त व्यवस्था होने पर भी अधिकांश श्रमियों का स्वास्थ खराब रहता है, उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं, वे कर्ज़दार रहते हैं। उनके रहने के स्थान साफ़, काफ़ी, और हवादार नहीं। बहुत से आदमी मद्यपान आदि दुर्व्यसनों में फँसे होते हैं, उनकी तथा उनके बालकों की शिक्षा और चिकित्सा आदि की कोई व्यवस्था नहीं। कुछ कारखाने वाले क्रमशः इन बातों की ओर ध्यान दे रहे हैं, अभी और बहुत प्रयत्नों की आवश्यकता है।

उद्योग और श्रमविभाग—उद्योग और श्रम का विभाग केन्द्रीय है। वह भारत सरकार के एक ही सदस्य की अध्यक्षता में है। उसका कार्य उद्योग धन्धों की उन्नति, पेटन्ट, 'कापीराइट,' और श्रमजीवियों के कुशल-क्षेम आदि सम्बन्धी विविध प्रश्नों का विचार करना है। प्रत्येक प्रान्त में एक उद्योग विभाग है, जिसका प्रधान 'डायरेक्टर-आफ़ इन्डस्ट्रीज़' कहलाता है।

व्यापार के साधन और उनकी उन्नति—भारतवर्ष में बहुत-सा व्यापार रेलों के द्वारा होता है। इनके महसूल आदि

के नियमों में व्यापारियों की सुविधा तथा किफायत का ध्यान रहना आवश्यक है। जिन नगरों में रेल नहीं पहुँचती, वहाँ मोटरों से माल ले जाया जाता है, परन्तु देश के अनेक भाग ऐसे हैं, जिनमें सड़कें अच्छी नहीं हैं, जहाँ मोटरें नहीं जा सकतीं, वहाँ माल ठेलों, गाड़ियों, और पशुओं आदि से ढोया जाता है। सड़कों की बहुत उन्नति होने की आवश्यकता है। आधुनिक काल में जितनी पूँजी रेलों में लगी है, उसकी तुलना में सड़कों पर अत्यन्त ही कम लगी है। इधर कुछ वर्षों से इस ओर कुछ अधिक ध्यान दिया जाने लगा है।

जल-मार्ग से होने वाले व्यापार के लिए नाव, और जहाज़ों की ज़रूरत होती है। हवाई जहाज़ों से भी कुछ व्यापार होने लगा है, आगे इसकी बहुत वृद्धि की सम्भावना है। डाक, तार, टेलीफ़ोन, और बेतार के तार से व्यापार में सहायता मिलती है। इन सब साधनों की उन्नति होना आवश्यक है। भारतवर्ष में सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में जो काम हो रहा है, वह अन्य परिच्छेदों में प्रसंगानुसार बताया गया है। व्यापार की उन्नति के लिए, अनुकूल व्यापार-नीति भी बहुत आवश्यक होती है। भारत सरकार की व्यापार-नीति के सम्बन्ध में, नवें परिच्छेद में आयात-निर्यात कर के प्रसंग में, कहा जा चुका है। गत वर्षों में कपड़े, लोहे, फौलाद, कागज़ और चीनी को संरक्षण मिला है। इससे इन वस्तुओं के कारखानों की कुछ उन्नति हुई है। आवश्यकता है कि अन्य वस्तुओं को भी संरक्षण देकर उनके कारोबार की उन्नति की जाय।

व्यापार विभाग—भारत सरकार के प्रसङ्ग में बताया जा चुका है कि उसका एक विभाग 'रेल और व्यापार' विभाग

है। इस प्रकार, जो सदस्य रेलवे सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण और नियंत्रण करता है, वही व्यापार सम्बन्धी विषयों का विचार करता है, व्यापार-नीति निर्धारित करता है, और आयात-निर्यात, जहाज़ों के आने जाने आदि की व्यवस्था करता है।

इक्कीसवाँ परिच्छेद
सहकारिता आन्दोलन

—: * :—

सहकारिता का महत्व—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है; अधिकांश आदमी मिल-जुल कर गाँवों या नगरों में रहते हैं। अति प्राचीन काल से मनुष्य ने सहयोग या सहकारिता का महत्व और उपयोगिता समझी है, और उसने इसका जितना अधिक उपयोग किया है, उतना ही उसने सभ्यता में आगे कदम बढ़ाया है। आज कल मनुष्यों की एक दूसरे से (शारीरिक) लड़ाई कम होती है, तो आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता तो चली ही है। निर्धन आदमी क्या करें? जिस सहकारिता ने मनुष्य समाज की प्रारम्भिक अवस्था में सहायता की, और उसे क्रमशः सभ्य बनाया, वही निर्धनों की समुचित सहायक हो सकती है।

उत्पादक और उपभोक्ता सहकारी समितियाँ—आर्थिक दृष्टि से मनुष्यों के तीन भेद किए जा सकते हैं:—(१) उत्पादक; जो वस्तुओं को पैदा करते या बनाते हैं। इनमें किसान, कारीगर, कल-कारखानों के मालिक आदि होते हैं। (२) उपभोक्ता; जो वस्तुओं को मोल लेते, और खर्च करते

हैं। (३) दलाल, जो उत्पन्न वस्तुओं को उत्पादकों से लेकर उपभोक्ताओं के पास पहुँचते हैं। इनमें छोटे बड़े सब व्यापारी तथा एजेंट आदि होते हैं। ये प्रायः उत्पादकों का उनके श्रम के बदले, कम से कम मूल्य देते, और उपभोक्ताओं से अधिक से अधिक मूल्य लेते हैं। ये प्रायः चतुर-चालाक और सम्पन्न व्यक्ति होते हैं, बाजार पर इनका आधिपत्य रहता है। इस समूह को सहकारिता की सहायता की आवश्यकता नहीं है, वह तो निर्धनों और निर्बलों की रक्षा के लिए है। अस्तु, उत्पादक और उपभोक्ता, ये दोनों समूह अपनी अपनी सहकारी समितियाँ बनाते हैं। उत्पादक सहकारी समिति का लक्ष्य यह रहता है कि माल पैदा करने में खर्च कम से कम हो, उसमें हर तरह की किफ़ायत की जाय, और पीछे उसे अच्छे दामों से बेचा जाय, जिससे मुनाफ़ा अधिक से अधिक हो। उपभोक्ता सहकारी समिति का ध्येय यह होता है कि वस्तुओं को कम से कम मूल्य में खरीदे, जहाँ कहीं, से तथा जिस रीति से वह सस्ती मिलें, खरीदी जायँ, जिससे समिति के सदस्यों को वे वस्तुएँ यथासम्भव कम मूल्य में, किफ़ायत से दी जा सकें। उक्त दोनों ही प्रकार की सहकारी समितियाँ दलालों को हटा देना चाहती हैं।

अन्य समितियाँ—सहकारिता के सिद्धान्तों का उपयोग अनेक प्रकार से हो सकता है। इसलिए उक्त दो प्रकार की सहकारी समितियों के अन्तर्गत कई तरह की समितियाँ होती हैं। उदाहरणवत् किसानों या कारीगरों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूंजी की प्रायः कमी रहती है, और इनकी साख कम होने के कारण इन्हें रुपया, बहुत अधिक सूद पर ही, उधार मिलता है। इनकी साख बढ़ने का एक उपाय यह है कि

सहकारी साख समितियाँ बनाई जायँ, कारण, कि जो पूंजी एक मनुष्य को, अकेले उसकी साख पर कभी कभी बहुत कष्ट तथा प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल सकती, वह कई मनुष्यों के सहयोग से, उन सब की साख पर, कम ब्याज में, आसानी से, तथा यथेष्ट मात्रा में मिल सकती है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, सहकारी साख समितियाँ किसानों के अतिरिक्त कारीगरों आदि के लिए भी आवश्यक और उपयोगी हैं। किसानों के लिए अन्य प्रकार की सहकारी समितियों की भी आवश्यकता होती है। 'कृषि' के परिच्छेद में खेतों की चकबन्दी का महत्व तथा उसकी रीति बताई जा चुकी है। यह काम चकबन्दी-सहकारी-समितियों द्वारा अच्छी तरह हो सकता है। कुछ अन्य सहकारी समितियाँ निम्न लिखित है :—दूध-सहकारी-समितियाँ, सिंचाई-सहकारी-समितियाँ, क्रय-समितियाँ, विक्रय-समितियाँ। वास्तव में सहकारी समितियों के भेदों का कुछ अन्त नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ, सफ़ाई, ग्राम-सुधार आदि चाहे जिस कार्य के लिए सहकारी समिति बनाई जा सकती है।

भारतवर्ष में सहकारिता—यद्यपि आधुनिक रूप में, सहकारिता आन्दोलन यहाँ बीसवीं शताब्दी में ही आरम्भ हुआ, तथापि यह अति प्राचीन काल से व्यवहार में आता रहा है। कुछ गाँवों में सब किसान मिल कर एक दो कोल्हू मोल या किराए पर ले लेते हैं और और बारी-बारी से ईख पेर लेते हैं। कहीं कहीं कई कई किसान मिल कर खेती करते हैं, और फ़सल को अपने श्रम, तथा बैलों के उपयोग के हिसाब से बाँट लेते हैं। बहुधा एक रखवारा कई खेतों की चौकसी के

लिए रखा जाता है। कहीं कहीं तालाब खोदने, सड़क, मंदिर, धर्मशाला आदि बनाने, तथा इनकी मरम्मत करने आदि का काम भी मिल कर किया जाता है। प्रायः पंचायती मंदिर आदि की प्रथा अभी तक प्रचलित है।

सहकारी साख समितियाँ—आधुनिक सहकारी समितियों में, भारतवर्ष में साख समितियों का विशेष प्रचार है। अतः इनके सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें जान लेना उपयोगी होगा। यहाँ इन समितियों का पहला क़ानून सन् १९०४ ई० में बना था, इसका संशोधन १९१२ में हुआ। अठारह वर्ष से अधिक आयु के कोई भी दस या इससे अधिक ईमानदार तथा एक दूसरे पर विश्वास करने वाले आदमी, सहकारी साख समिति बना सकते हैं। प्रत्येक सभासद पर समिति का सब क़र्ज़ अदा करने का उत्तरदायित्व रहता है। सब काम सभासदों के हाथ में रहता है; सरकारी अफ़सर केवल हिसाब जाँचते हैं, और आवश्यक परामर्श देते हैं।

सरकार ने इन समितियों को कई सुविधाएँ दे रखी हैं। इन समितियों तथा इनके सदस्यों की ओर से, समिति के सम्बन्ध में जो दस्तावेज़ लिखे जायँ, उनका स्टाम्प ख़र्च, तथा जो रजिस्ट्री कराई जायँ, उनका रजिस्टरी ख़र्च, माफ़ है। सहकारी साख समितियों के मुनाफ़े पर इनकम टैक्स भी माफ़ है। एक समिति अपने ज़िले की दूसरी समिति को रुपया बिना ख़र्च भेज सकती है। समिति के किसी सभासद का कोई हिस्सा कभी कुर्क नहीं किया जा सकता। रजिस्टरी होजाने पर समिति को ज़िले के सेंट्रल बैंक से निर्धारित सूद पर रुपए मिलने लगते हैं। समितियाँ रुपया उधार लेकर, उसे कुछ अधिक सूद

पर अपने सदस्यों को दे देती हैं। इस सूद की दर उस दर से कम होती है, जिस पर साधारणतः किसानों को किसी अन्य व्यक्ति या संस्था से रुपया उधार मिल सकता है।

इन समितियों से सर्व साधारण को बहुत लाभ होता है। इनके सभासदों को, समितियों से रुपया कम सूद पर मिलता है। लोगों को आपस में मिलकर काम करने की आदत पड़ती है। इससे उनमें पारस्परिक प्रेम और एकता की वृद्धि होती है। इनके सभासदों को मितव्ययिता का अभ्यास होजाता है, इससे उनकी आर्थिक दशा सुधरती है।

इन समितियों के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। सन् १९१९ ई० के सुधारों के अनुसार सहकारी समितियों का विषय प्रान्तीय सरकारों के अधीन है।

ग्राम-सुधार और सहकारिता—पहले कहा जा चुका है कि सहकारिता के सिद्धान्तों का उपयोग अनेक कार्यों में किया जा सकता है। कुछ समय से ग्राम-सुधार की ओर भारतीय नेताओं का विशेष ध्यान आकर्षित हुआ है, सरकार भी इस कार्य के लिए कुछ शक्ति तथा रुपया लगाने लगी है। अस्तु, इस कार्य में भी सहकारिता के सिद्धान्तों का उपयोग किया जा रहा है।

प्रत्येक प्रान्त में थोड़ा बहुत कार्य हो रहा है। बहुधा ज़िले में कार्यकर्ता तैयार किए जाते हैं और गाँव में सहकारी साख समिति तथा स्कूल खोला जाता है। प्रायः स्कूल को ग्राम-सुधार का केन्द्र बनाया जाता है; कार्यालय सम्बन्धी आवश्यक कार्य स्कूल का अध्यापक करता है। बालक बालिकाओं को उन सुधारों के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाती है जो गाँव में करने होते

हैं। गाय बैल की नस्ल सुधारने का प्रयत्न किया जाता है, और इसके लिए गाँव में अच्छे साँड़ खरीद कर रखे जाते हैं। खेती के लिए अच्छा बीज सहकारी साख समिति द्वारा बेचा जाता है। किसानों को गोबर तथा दूसरा कूड़ा गड्ढों में भर कर खाद बेचना सिखाया जाता है। उन्हें गोबर के कंडे बनाने की हानियाँ बताई जाती हैं। शौच जाने के लिए गड्ढे वाले शौच-स्थान ('पिट-लेट्रीन') तैयार कराए जाते हैं। रोगियों का इलाज करने के लिए वैद्य या डाक्टर की व्यवस्था की जाती है। मुक़द्दमे-बाजी कम करने तथा रुपया आभूषणों में न लगा कर साख समितियों में जमा कराने का परामर्श दिया जाता है।

अभी यह कार्य बहुत थोड़े से ही गावों में हो रहा है, तथा उनकी भी आबादी के विचार से, कार्य काफी नहीं हो रहा है। यदि सरकारी अधिकारी यथेष्ट ध्यान दें और जनता के आदमियों से मिल कर कार्य करें तो ग्रामों में सहकारिता के सिद्धान्तों के उपयोग से बहुत सुधार हो सकता है।

बाईसवाँ परिच्छेद

स्थानीय स्वराज्य

—: * :—

प्राक्कथन—भारतवर्ष स्वराज्य-प्राप्त देश नहीं है। यहां की जनता को अपने देश या प्रान्त के शासन में थोड़े से ही अधिकार हैं। उन्हें सरकार द्वारा केवल अपने अपने स्थानों अर्थात् देहातों या नगरों के ही सुधार या प्रबन्ध सम्बन्धी कुछ विशेष अधिकार

मिले हुए हैं। इन अधिकारों का उपयोग करने के लिए जो संस्थाएं बनाई गई हैं, वे 'स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ' कहलाती हैं। इनके भेद ये हैं :—

(१) म्युनिसिपैलिटियाँ, कारपोरेशन, और 'नोटीफाइड एरिया'
(२) जिला-बोर्ड या ज़िला-कौंसिल,
(३) पंचायतें, और
(४) पोर्ट ट्रस्ट तथा इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट।

म्युनिसिपैलिटियों ; संक्षिप्त इतिहास—म्युनिसिपैलिटियों का कार्य-क्षेत्र नगर या शहर है। इनके दो उद्देश्य हैं :—नगर का सुधार होना, और जन साधारण को सार्वजनिक कार्य करने की व्यावहारिक शिक्षा मिलना। प्रेसीडेन्सी नगरों अर्थात् कलकत्ता, बम्बई और मद्रास को छोड़ कर, सन् १८४२ ई० तक भारतवर्ष में कोई म्युनिसिपैलिटी स्थापित नहीं की गई थी। उस वर्ष एक ऐक्ट बंगाल में म्युनिसिपैलिटियाँ स्थापित करने के विचार से बनाया गया, परन्तु उस से कोई सफलता प्राप्त न हुई। सन् १८५० ई० में समस्त भारत के लिए ऐक्ट पास किया गया, जिस से प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार मिल गया कि वे, जहाँ जनता की रुचि हो, सड़कें बनाने और सुधारने, रोशनी, अथवा अन्य प्रकार से नगर की उन्नति के हेतु म्यूनिसिपैलिटियाँ स्थापित कर सकें। इसी ऐक्ट से मकान तथा अन्य प्रकार के माल पर टैक्स लगाया जाने लगा।

बीस वर्ष तक म्युनिसिपैलिटियों का विशेष विस्तार न हुआ। सन् १८७० ई० में, कुछ वास्तविक उन्नति लार्ड मेओ के समय में हुई। पश्चात् चुनाव के सिद्धान्त का प्रचार हुआ। परन्तु

अधिकांश में म्युनिसिपैलिटियाँ सरकारी कर्मचारियों के ही अधीन रहीं। विशेष उन्नति सन् १८८४ ई० में हुई, जब कि लार्ड रिपन ने म्युनिसिपैलिटियों के अधिकार बढ़ाए, और उन पर सरकारी दबाव कम किया। उस वर्ष के ऐक्ट से ऐसा नियम किया गया कि म्युनिसिपैलिटियों के आधे मेम्बर चुने जायँ, और शेष के भी आधे से अधिक सरकारी वेतन पाने वाले न हों। सभापति मेम्बरों द्वारा भी चुना जा सकता था और सरकार भी नियत कर सकती थी। यदि वह सरकार द्वारा नियत हो तो उप-सभापति चुनने का अधिकार मेम्बरों को रहता था।

सन् १९०९ ई० में अधिकार-विभाजक (Decentralisation) कमीशन ने इस कार्य को बढ़ाने का प्रस्ताव किया। तदुपरान्त सन् १९१५ में भारत सरकार ने एक सविस्तर प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसमें इन संस्थाओं की उन्नति के उपाय बताए गए। मांट-फोर्ड सुधारों के सम्बन्ध में विचार करने के समय इस विषय पर भी विचार हुआ, और सन् १९१८ ई० में भारत सरकार ने इनकी उन्नति और वृद्धि के सम्बन्ध में अपना नया प्रस्ताव प्रकाशित कराया।

आधुनिक स्थिति—म्युनिसिपैलिटियों का नया निर्वाचन प्रायः चार साल में होता है। प्रत्येक प्रान्त में निर्वाचकों की योग्यता सम्बन्धी साधारण नियम समान हैं, ब्यौरेवार बातों में थोड़ी बहुत भिन्नता है। साधारणतया ऐसा प्रत्येक व्यक्ति निर्वाचक या मत दाता ('वोटर') हो सकता है, जो म्युनिसिपैलिटी की सीमा में कम से कम छः मास से रहता हो, इक्कीस या अधिक वर्ष का हो, और जो निर्धारित किराए वाले मकान में रहता हो, या उसका मालिक हो, या जिसकी निर्धारित आय हो। स्त्रियों

को भी मताधिकार प्राप्त है। प्रायः म्युनिसिपैलिटियों में जातिगत प्रतिनिधित्व की प्रथा प्रचलित है, यह बहुत अहितकर है। (म्युनिसिपैलिटी के लिए निर्वाचकों की अयोग्यताएँ वही हैं, जो हम भारतीय व्यवस्थापक मंडल के प्रसंग में, बता चुके हैं।)

ब्रिटिश भारत की कुल म्युनिसिपैलिटियों की संख्या लगभग ७८० है।* म्युनिसिपैलिटी के सदस्य भिन्न भिन्न शहरों में कम ज्यादह होते हैं। अधिकांश म्युनिसिपैलिटियों में कुल सदस्यों के आधे से दो-तिहाई तक निर्वाचित रहते हैं। म्युनिसिपैलिटी के सदस्य 'म्युनिसिपल कमिश्नर,' कहलाते हैं। बड़ी बड़ी म्युनिसिपैलटियों में अपना इञ्जिनियर, ओवरसियर, स्वास्थ-अफसर, और सफाई-निरीक्षक (सेनीटरी-इन्स्पेक्टर) आदि होते हैं। म्युनिसिपल कर्मचारियों में सेक्रेटरी या प्रबन्धक ('ऐग्जीक्यूटिव') अफसर का पद बड़े महत्व का होता है।

कार्य पद्धति—सभापति प्रायः सदस्यों द्वारा निर्वाचित किया जाता है; यह आवश्यक नहीं है कि वह सदस्यों में से ही हो। उप-सभापति सदस्यों में से ही निर्वाचित होता है, इस पद के लिए कभी कभी दो व्यक्ति भी चुने जाते हैं, एक 'सीनियर वाइस चेयरमेन' कहलाता है, दूसरा जिसका पद इससे छोटा होता है, 'जूनियर वाइस चेयरमेन' कहा जाता है। कार्य की सुविधा के लिए म्युनिसिपल कमेटी के अधीन उस के सदस्यों की कई छोटी छोटी कमेटियाँ या समितियाँ होती हैं, यथा शिक्षा समिति, स्वास्थ समिति, अर्थ समिति आदि। प्रत्येक समिति में

---

* सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार बर्मा ब्रिटिश भारत में न रहने से, अब म्युनिसिपैलिटियों की संख्या ७२७ रह गई है।

एक एक सभापति तथा दो चार अन्य सदस्य रहते हैं। (एक व्यक्ति दो या अधिक समितियों का भी सदस्य हो सकता है)। इन समितियों में ऐसे व्यक्ति भी मिला लिए जाते हैं, जो म्युनिसिपैलिटी के सदस्य न हों, हाँ, समिति से सम्बन्धित विषय के अनुभवी हों। ऐसे सदस्य 'को-आपटेड' (Co-opted) या मिलाए हुए कहलाते हैं।

प्रान्तीय सरकार म्युनिसिपैलिटी के कार्य का निरीक्षण और नियंत्रण करती है। कमिश्नर बजट की जाँच करता है, और अनुचित समझे जाने वाले व्यय को रोक सकता है।

म्युनिसिपैलिटियों के कार्य—भिन्न भिन्न स्थानों में कुछ भेद होते हुए, साधारणतः म्युनिसिपैलिटियों के मुख्य कार्य ये हैं:—(१) सर्वसाधारण की सुविधा की व्यवस्था करना—सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत करना, उन पर रोशनी और छिड़काव कराना और वृक्ष लगवाना, डाक बंगला आदि बनवाना, कहीं आग लग जाय तो उसे बुझाना, (२) स्वास्थ रक्षा—अस्पताल या औषधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी के बहने का प्रबन्ध कराना, और छूत की बीमारियों को रोकने के लिए उचित उपाय काम में लाना; पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलाई गई है, इसका निरीक्षण करना। (३) शिक्षा, विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए, पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था करना, मेले और नुमायशें करना।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य मुख्य साधन ये हैं:—(१) चुंगी, यह इन संस्थाओं की

सीमा के अन्दर आने वाले माल तथा जानवरों पर लगती है। संयुक्त प्रान्त में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ ज़िलों में म्युनिसिपैलिटियों का नाम ही 'चुंगी' पड़ गया है। (२) मकान और ज़मीन पर कर। (३) नदियों के पुल पर कर। (४) सवारियों, गाड़ी, बग्गी, साइकिल, मोटर और नाव पर कर। (५) पानी, रोशनी, सफ़ाई, आदि का कर। (६) हैसियत, जायदाद और जानवरों पर कर। (७) यात्रियों पर कर। यह कर एक निर्धारित दूरी से अधिक के फ़ासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है। (८) म्युनिसिपल स्कूलों की फ़ीस (९) शिक्षा प्रचार या सफ़ाई आदि के विशेष कार्य के लिए सरकारी सहायता या ऋण।

कारपोरेशन—कलकत्ता, बम्बई और मद्रास शहर की म्यूनिसिपैलिटियाँ 'म्यूनिसिपल कारपोरेशन' या केवल 'कारपोरेशन' कहलाती हैं। इनके सदस्यों (कमिश्नरों) को कौंसिलर, और सभापति को 'मेयर' कहते हैं। अन्य म्युनिसिपैलटियों से इनका संगठन कुछ भिन्न प्रकार का, और आय व्यय तथा कार्य क्षेत्र अधिक, होता है।

नोटीफाइड एरिया—इसे म्युनिसिपैलिटी के थोड़े से अधिकार होते हैं। यह ऐसे कस्बे में होता है जिसकी जन-संख्या दस हज़ार से अधिक न हो। इस के अधिकांश सदस्य नामज़द होते हैं।

जिला-बोर्ड या जिला-कौंसिल—देहातों में स्थानीय स्वराज्य का आरम्भ, म्युनिसिपैलिटियों के स्थापित होने के बहुत दिनों बाद हुआ। यहाँ स्वास्थ, सफ़ाई, प्रारम्भिक शिक्षा

तथा औषधादि का प्रबन्ध रखने के उद्देश से 'ज़िला-बोर्ड' या ज़िला-कौंसिल संगठित की गई हैं। कहीं कहीं तालुका (तहसील) बोर्ड या लोकल बोर्ड हैं। इनके मत दाताओं, तथा आय आदि के विषय में नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे म्युनिसिपैलिटियों के। जो कार्य शहरों में म्युनिसिपैलिटियों के हैं, प्रायः वे सब कार्य देहातों में बोर्डों के होते हैं। उनके अतिरिक्त इन्हें कृषी और पशुओं की उन्नति के लिए भी विविध कार्य करने चाहिये। इस प्रकार उनका कर्तव्य महान है। इसे देखते हुए बोर्ड प्रायः बहुत ही कम कार्य कर रहे हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि उनकी आय बहुत थोड़ी है। अधिकतर आय उस महसूल से होती है, जो भूमि पर लगाया जाता है और जो सरकारी वार्षिक लगान या मालगुज़ारी के साथ ही, प्रायः एक आना फ़ी रुपए के हिसाब से वसूल करके, इन बोर्डों को दे दिया जाता है।

पंचायतें—प्राचीन काल में यहाँ प्रत्येक गाँव या नगर में एक प्रभावशाली पंचायत रहती थी, जो स्थानीय रक्षा-कार्य के लिए अपनी पुलिस रखती, स्वयं भूमि-कर वसूल करके राजकोष में भेजती, और छोटे मोटे दीवानी और फ़ौज़दारी के झगड़ों का निपटारा करती थी। पंचायतों का यहाँ इतना विश्वास था कि अब तक भी 'पंच परमेश्वर' की कहावत चली आती है। पंचायतें यहाँ हिन्दुओं के ज़माने से थीं, मुसलमानी अमलदारी में भी रहीं। परन्तु अंगरेज़ों के शासन काल में इनकी आय तथा अधिकार प्रान्तीय सरकारों ने ले लिए। पुलिस, तथा फ़ौजदारी अदालतें स्थापित करदी गईं। इससे पंचायतों का क्रमशः ह्रास हो गया। यद्यपि अब भी पंचायती मन्दिर

और धर्मशाला आदि बनती हैं, ये, प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिन्ह मात्र हैं।

पंचायतें, अब पुनः, नवीन रूप से, स्थापित कराने का उद्योग हो रहा है; इनके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रांतों में क़ानून बनाए गए हैं, और कितने ही स्थानों में सरकार द्वारा इनकी स्थापना हो गई है, तथा हो रही है। इनमें प्रायः चार पाँच या अधिक सदस्य, तथा एक सरपंच होता है। प्रायः सदस्यों का निर्वाचन गाँव वाले नहीं करते, जिलाधीश उन्हें नामज़द करता है। इन्हें छोटे-मोटे दीवानी तथा फ़ौजदारी मामलों का फ़ैसला करने का अधिकार होता है। इनमें पेश होने वाले मुक़द्दमों में, किसी पक्ष की ओर से कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता, अन्य खर्च भी कम होता है। पंचायतों को गाँव में शिक्षा, सफ़ाई, और आवारा फिर कर नुकसान पहुँचाने वाले मवेशियों के सम्बन्ध में भी कुछ अधिकार दे दिए जाते हैं।

आधुनिक पंचायतों के अधिकार प्राचीन पंचायतों की अपेक्षा बहुत कम हैं। ये एक प्रकार की सरकारी संस्थाएँ हैं और इनका कार्य सरकारी कर्मचारियों की सहायता से, तथा उनके ही निरीक्षण और नियंत्रण में होता है।

पोर्ट ट्रस्ट—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, चटगाँव, करांची और रंगून आदि बन्दरगाहों का स्थानीय प्रबन्ध करने वाली संस्थाएँ 'पोर्ट ट्रस्ट' कहाती हैं। ये घाटों पर मालगोदाम बनाते हैं और व्यापार के सुभीते के अनुसार, नाव और जहाज़ की सुव्यवस्था करते हैं। इनके सभासद 'ट्रस्टी' कहलाते हैं। कलकत्ते के सिवाय सब पोर्ट ट्रस्टों में निर्वाचित सदस्यों की

अपेक्षा नामज़द ही अधिक रहते हैं। ये ही ऐसी स्वराज्य-संस्थाएँ हैं जिनके सदस्यों को कुछ भत्ता मिलता है। माल-लदाई और उतराई, गोदाम के किराए, तथा जहाज़ों के कर से जो आमदनी होती है, वही इनकी आय है।

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट—बड़े बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिए कभी कभी विशेष कार्य करने होते हैं, जैसे संकुचित सड़कों को चौड़ी करना, घनी बस्तियों को हवादार बनाना, ग़रीब और मज़दूरों के लिए मकानों की सुव्यवस्था करना, आदि। इनके कामों के वास्ते 'इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट' बनाए जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, रंगून, इलाहाबाद, लखनऊ और कानपुर आदि में हैं। इनके सदस्य सरकार, म्युनिसिपैलिटियों तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामज़द किए जाते हैं। ये अपने कार्य के लिए, अधिकार-गत भूमि आदि का किराया, तथा आवश्यकतानुसार ऋण या सहायता लेते हैं।

तेईसवाँ परिच्छेद

देशी रियासतें

—:*:—

इस पुस्तक के प्रथम परिच्छेद में बताया जा चुका है कि भारतवर्ष में अंगरेजों के अतिरिक्त, योरप के अन्य देशों के निवासियों ने भी राज्य-स्थापना का प्रयत्न किया था, पर अन्ततः विजय अंगरेजों की रही। तथापि कुछ स्थान अभी तक फ्रांसीसियों, और पुर्तगीज़ों के अधीन हैं—इनकी जनसंख्या क्रमशः लगभग तीन लाख और छः लाख है। भारतवर्ष का जो भाग

अंगरेजी राज्य के अन्तर्गत हुआ, वह ब्रिटिश भारत कहलाता है। इसका क्षेत्रफल ८,६३,००० वर्ग मील, और जनसंख्या लगभग २६ करोड़ है। पिछले परिच्छेदों में जो शासन पद्धति बताई गई है, वह इसी भाग की है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष का खासा भाग देशी राज्यों या रियासतों का है; उनके सम्बन्ध में इस परिच्छेद में लिखा जाता है।

साधारण परिचय—देशी रियासतों से भारतवर्ष के उन भागों का प्रयोजन है, जिनका आन्तरिक शासन यहाँ के ही राजा या सरदार, विविध संधियों के अनुसार, सम्राट् की अधीनता में रहते हुए, करते हैं। छोटी बड़ी सब रियासतों की संख्या ५६० है। इनमें से हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर, कशमीर और गवालियर आदि कुछ तो अपने विस्तार में योरप के प्रधान स्वतंत्र राष्ट्रों के समान हैं, और बहुत सी साधारण गाँव सरीखी हैं। जिन्हें वास्तव में रियासत कहा जाना चाहिये, उनकी संख्या दो सौ से भी कम है; शेष सनदी जागीरें (Estates) हैं, जिनके अधिपति, सरदार या 'चीफ़' कहलाते हैं। तीस रियासतें ऐसी हैं, जिनकी आबादी, क्षेत्रफल और साधन ब्रिटिश भारत के औसत ज़िले के समान हैं। तेईस ऐसी हैं जिनका विस्तार एक एक वर्ग मील भी नहीं है, और नौ ऐसी हैं जिनका क्षेत्रफल एक एक वर्ग मील है। चार राज्यों में सौ सौ आदमियों की संख्या भी नहीं है, और तीन की वार्षिक आय सौ सौ रुपए से कम है। सब रियासतों का क्षेत्रफल कुल मिला कर सात लाख वर्ग मील, और जनसंख्या आठ करोड़ से अधिक है।

देशी रियासतें और भारत सरकार; संक्षिप्त इतिहास—देशी रियासतों का भारत सरकार से समय समय

पर भिन्न भिन्न प्रकार का सम्बन्ध रहा है। मोटे हिसाब से यह सम्बन्ध तीन प्रकार का कहा जा सकता है। (१) भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य स्थापना सन् १७५७ ई० से आरम्भ हुई, मानी जाती है। उस समय से चालीस वर्ष तक कम्पनी देशी रियासतों को स्वतंत्र मानती रही, वह अपने राज्य की सीमा पर के भागों से देश काल के अनुसार व्यवहार करती थी, अन्य भागों से सम्पर्क में आने से यथा-सम्भव बचती थी।

(२) इस अ-हस्तक्षेप नीति में लार्ड वेलज़ली (१७९८-१८०५) ने परिवर्तन किया। उसने सहायक (Subsidiary) सन्धि की रीति चलाई। जो रियासत यह संधि स्वीकार करती थी, वह कम्पनी की प्रभुता मानती थी, और अपने खर्च से अंगरेजी सेना रखती थी। जब वह रियासत सेना का खर्च देने में असमर्थ हो जाती थी, तो वह उसके बदले में राज्य का कुछ भाग कम्पनी को देती थी। इन संधियों से भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य का प्रभाव तथा विस्तार बढ़ा और देशी राज्यों की शक्ति क्षीण होती गई। लार्ड डलहौज़ी (१८४८-५६) ने यह नियम कर दिया कि कुछ खास प्रमुख रियासतों को छोड़ कर अन्य रियासतों में नरेश के निस्संतान मर जाने की दशा में, उसका राज्य गोद लिए हुए व्यक्ति को न मिले, जब तक कि अंगरेज सरकार उसे उसका उत्तराधिकारी स्वीकार न करले। इस प्रकार, इस समय से, कम्पनी ने रियासतों के आन्तरिक विषयों में तो हस्तक्षेप न किया, परन्तु बहुत सी रियासतों को अंगरेजी राज्य में मिला लिया। यह नीति सन् १८५७ ई० की राज्य क्रान्ति तक रही। (३) इसके बाद देशी रियासतों के सम्बन्ध में जो नीति निश्चित हुई, वह मोटे तौर से अब तक चली जा रही है।

साम्राज्ञी की घोषणा—इस नीति का आधार महारानी विक्टोरिया की सन् १८५८ ई० की घोषणा है। इस घोषणा का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यद्यपि एक उत्तरदायी पदाधिकारी ने इसे 'असम्भव सनद' (Impossible charter) कहा है, तथापि इसका भारतीय राजनीति में महत्व-पूर्ण स्थान माना जाता है। देशी राज्यों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति के विषय में, इस घोषणा में कहा गया था :—

"हम अपने वर्तमान (भारतीय) राज्य का, और अधिक विस्तार नहीं चाहते। जब कि हम अपने राज्य या अधिकारों पर किसी को आक्रमण न करने देंगे, हम औरों के (राजाओं के) राज्य या अधिकारों पर भी कोई आघात न होने देंगे। हम देशी राजाओं के अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा का, अपने अधिकारों और मान-प्रतिष्ठा की तरह, सम्मान करेंगे।"

भारत सरकार की वर्तमान नीति--इस समय देशी रियासतों के प्रति भारत सरकार की नीति यह है कि जब तक वे सरकार के प्रति राजभक्ति बनाए रक्खें, और पहले की हुई संधि की शर्तों का यथोचित पालन करते रहें, तब तक सरकार उनकी रक्षा करेगी और उनका अस्तित्व बनाए रखेगी। यद्यपि साधारण दशा में देशी नरेश अपनी रियासतों का स्वयं प्रबन्ध करते हैं, वे भारत सरकार के परामर्श की अवहेलना नहीं कर सकते। सरकार जिस नरेश को अयोग्य या असमर्थ समझे, उसे गद्दी से उतार कर, उसके किसी सम्बन्धी को पदारूढ़ कर देती है, या उसके राज्य में कोई एडमिनीस्ट्रेटर (शासक) नियत कर देती है। यदि किसी नरेश के सन्तान न हो तो उसे उत्तराधिकारी या वारिस गोद लेने की इजाज़त दी जाती है। वारिस के नाबालिग़ (अल्पायु) होने की हालत में देशी राज्य

के शासन का प्रबन्ध सरकार करती, या रिजेन्सी द्वारा करवाती है। इन रियासतों को इस बात की अनुमति नहीं रहती कि सरकार की आज्ञा बिना वे परस्पर में एक दूसरे से, अथवा किसी विदेशी राष्ट्र से किसी प्रकार का राजनैतिक व्यवहार कर सकें, अथवा किसी विदेशी को अपने यहाँ नौकर रख सकें। इन रियासतों की रक्षा का भार सरकार ने अपने ऊपर ले रखा है, और इन्हें सरकार की सहायता के लिए कुछ सेना रखनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, ये थोड़ी सी फ़ौज अपनी आन्तरिक शान्ति अथवा दिखावे के लिए रख सकती हैं, परन्तु किसी पर चढ़ाई करने, अथवा किसी की चढ़ाई से अपने को बचाने के लिए ये कोई फ़ौज नहीं रख सकतीं।

पहले बताया जा चुका है, भारत सरकार का 'विदेश और राजनैतिक विभाग देशी रियासतों की निगरानी करता है, यह विभाग स्वयं वायसराय के अधीन है। ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में देशी रियासतों सम्बन्धी आलोचना या प्रश्नोत्तर नहीं हो सकते।

देशी रियासतों के अधिकार—देशी रियासतों के निवासी अपने अपने नरेश की प्रजा हैं। साधारणतया इन पर, अथवा इनके शासकों पर ब्रिटिश भारत का क़ानून नहीं लग सकता। हाँ, देशी रियासतों में रहने वाली ब्रिटिश प्रजा पर, तथा रेज़ीडेन्सी, छावनी, रेल या नहर की भूमि में, अथवा राजकोट या बढ़वान (गुजरात) जैसे स्थानों में जहाँ व्यापार आदि के कारण बहुत से अंगरेज रहते हों, अंगरेजी सरकार के ही क़ानून का व्यवहार होता है। ब्रिटिश भारत का यदि कोई अपराधी किसी देशी रियासत में भाग जाय, तो वह उस नरेश की आज्ञा

से पकड़ा जाकर, ब्रिटिश भारत में भेज दिया जाता है। देशी रियासतों की प्रजा अपनी रियासत की सीमा के बाहर ब्रिटिश प्रजा की तरह मानी जाती है।

साधारणतः देशी नरेश अपनी प्रजा से कर लेते, तथा उसके दीवानी और फ़ौजदारी मामलों का फ़ैसला करते हैं। कुछ नरेश अपने यहाँ आने वाले माल पर चुंगी लेते हैं। कुछ अभी तक अपने रुपए आदि सिक्के ढालते हैं। परन्तु, इन सब को अपने यहाँ अंगरेज़ी रुपए को वही स्थान देना पड़ता है, जो उसे ब्रिटिश भारत में मिला है।

जाँच कमीशन—ऐसे झगड़ों के विषय में जो दो या अधिक रियासतों में, अथवा किसी रियासत और किसी प्रान्तिक सरकार या भारत सरकार में उपस्थित हों, वायसराय एक कमीशन नियुक्त कर सकता है, जो झगड़े वाले मामले की जाँच करके उसके सामने अपना आवेदन करे। अगर वायसराय इस आवेदन को मंजूर न कर सके तो वह उस मामले को फ़ैसले के लिए भारत मंत्री के पास भेज देगा। जाँच कमीशन की यह व्यवस्था सन् १९२० ई० से हुई है।

नरेन्द्र मंडल—पिछले सुधारों के अनुसार, १९२१ से नरेन्द्र मंडल (चेम्बर-आफ़-प्रिंसेज़) नामक एक समिति बनी हुई है। इसमें १२० सदस्य हैं। बड़ी बड़ी १०८ रियासतों के नरेशों को एक एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है, और १२ सदस्य १२७ नरेशों के प्रतिनिधि हैं। शेष ३२५ छोटी रियासतों को इसमें कोई स्थान प्राप्त नहीं है। जिन विषयों का प्रभाव कई रियासतों पर पड़ता हो, अथवा जिनका सम्बन्ध ब्रिटिश साम्राज्य या ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों से हो, उन पर इस

संस्था की सम्मति माँगी जाती है। इसका सभापति वायसराय होता है, उसकी अनुपस्थिति में राजाओं में से ही कोई प्रधान का कार्य करता है। मंडल के नियम, वायसराय नरेशों की सम्मति लेकर बनाता है। मंडल प्रति वर्ष एक छोटी सी स्थाई समिति बनाता है, जिससे वायसराय या सरकार का 'विदेश और राजनैतिक' विभाग देशी रियासतों सम्बन्धी महत्व-पूर्ण विषयों में सम्मति लेता है।

मंडल का प्रधान कार्यालय देहली में है। अधिवेशन प्रायः साल में एक बार होता है, उसमें वायसराय द्वारा स्वीकृत विषयों पर ही वादानुवाद होता है। सन् १९२८ ई० तक अधिवेशन की सब कार्रवाई गुप्त रखी जाती थी, अब इसमें कुछ दर्शक भी उपस्थित हो सकते हैं।

बटलर कमेटी की सिफारिशें—सन् १९२७ ई० में ब्रिटिश भारत के शासन सुधारों के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए साइमन कमीशन नियुक्त हुआ था। उसी समय, देशी रियासतों का ब्रिटिश सरकार से क्या सम्बन्ध रहे, तथा उनका ब्रिटिश भारत से आर्थिक सम्बन्ध कैसा हो, इस विषय का विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त हुई, जिसे उसके सभापति के नाम पर 'बटलर कमेटी' कहते हैं। इसने सिफारिश की, कि देशी नरेशों को ब्रिटिश भारत की आयात-कर आदि उन मद्दों की आय में से कुछ हिस्सा दिया जाय, जिनकी आय देशी राज्यों की प्रजा से वसूल होती है। इसकी एक मुख्य सिफारिश यह भी थी कि देशी रियासतों का सम्बन्ध भारत सरकार से न रह कर सम्राट् से रहे, अर्थात् गवर्नर-जनरल से न रह कर सम्राट्-प्रतिनिधि वायसराय से रहा करे।

संघ शासन और देशी रियासतें—भाषा, धर्म, जाति, व्यापार, आदि की दृष्टि से भारतवर्ष अखंड है ; उसके ब्रिटिश भारत और देशी राज्य दो सर्वथा पृथक् भेद नहीं किए जा सकते । सन् १९१७ ई० में मांट-फोर्ड रिपोर्ट में इसका उल्लेख हुआ था । पश्चात् बटलर कमेटी, और साइमन क[illegible]न ने भी दोनों भागों के प्रतिनिधियों की सम्मिलित सभा की सिफारिश की । तदनंतर सन् १९३० ई० में, लन्दन में गोलमेज सभा हुई, उसमें संघ शासन के सिद्धान्त को व्यवहार में परिणत करने के विषय में विचार किया गया, और वहाँ उपस्थित नरेशों ने इसे स्वीकार कर लिया । इसके फल-स्वरूप सन् १९३५ ई० के शासन विधान में भारतवर्ष में केन्द्रीय शासन का स्वरूप संघ शासन निर्धारित किया गया है, जिससे ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों का एक संघ बन कर, दोनों का एक साथ शासन हो । इसके सम्बन्ध में 'भारत सरकार' और 'भारतीय व्यवस्थापक मंडल' शीर्षक परिच्छेदों के अन्त में लिखा जा चुका है ।